अजी सुनो....!

गोपालप्रसाद व्यास

प्रथम बार : १९४८
चार रुपये

प्रकाशक—
सुबुद्धिनाथ,
मंत्री, राजहंस प्रकाशन,
दिल्ली ।

मुद्रक
अमरचंद्र,
राजहंस प्रेस,
दिल्ली ।

अपनी ही पत्नी को
सादर, सप्रेम
और सभय

बहू-मति

मेरी पत्नी के विचार से कविता, खासतौर पर मेरी तुकबन्दी, बिल्कुल वाहियात चीज है। उनका कहना है कि मैंने अपनी इस अक्लमन्दी से—न तो उनके मातृकुल और न अपने पितृकुल—किसीका भी नाम रौशन नहीं किया। अनेक बार अपने इस विश्वास को वे ऐसी दृढ़ता से दुहरा चुकी हैं कि सचमुच मैं अपनी बुद्धिमानी के बारे में निराश नहीं तो आशंकित अवश्य होउठा हूं।

लेकिन दूसरी ओर, कवि-सम्मेलनों द्वारा लाखों श्रोताओं ने, पिछले संस्करणों के हजारों पाठकों ने, अखबारों, आलोचकों और रेडियो के डाइरेक्टरों ने मेरी इस मूर्खता की, मुफ्त और नकद, भूरि-भूरि सराहना की है।

एक ओर विशाल बहुमत है और दूसरी ओर अकेली, अतुलनीय, अनुपेक्षणीय, जबर्दस्त बहू-मति! समझ में नहीं आता क्या करूं?

पर सुना यह है कि अधिक बुद्धिमानी से अजीर्ण होजाता है। इसलिए अभी तो बेवकूफी से ही चिपटा हुआ हूं। आगे की भगवान् जानें।

'हिन्दुस्तान'
नई दिल्ली
८-१२-४८

गोपालप्रसाद व्यास

???

१—उनका पाकिस्तान १

२—पत्नी पर कण्ट्रोल करो ५

३—डबल भैंस १०

४—खोगई-खोगई १४

५—हिजड़िस्तान २१

६—सुकुमार गधे २५

७—पति के मित्र २८

८—हिन्दी का अध्यापक ३१

९—हटो, मुझे भरती होने दो ३५

१०—ले नाच जम्हूरे ३७

११—मेरे साजन ३८

१२—कुछ नहीं समझ में आता है ४२

१३—जो लिखी न हो घरवाली पर ४६

१४—पत्नीव्रत ५०

१५—नया रोजगार ५३

१६—अब नया धर्म निर्माण करो ५९

१७—मैं अवसरवादी नेता हूं ६२

१८—यह झगड़ा मुझे पसन्द नहीं ६६

१९—तुलसी मेरा उपकार करो ६९

२०—जन्माष्टमी के दिन ७२

२१—स्नान धर्म	७५
२२—कहना सुनना बेकार गया	७८
२३—आया ताजा अखबार प्रिये	८१
२४—दिल्ली का तोहफा	८४
२५—पत्नी को परमेश्वर मानो	८८
२६—सब गांधीजी की माया है	९२
२७—मैं महावीरजी जाऊंगी	९५
२८—दिवाली के दिन	१००
२९—एजी कहूं कि ओजी कहूं	१०३
३०—पत्र का उत्तर	१०६
३१—व्यास हास्यावली	११२
३२—आदत से मजबूर	११५
३३—चला जा	११६
३४—मुझे जुकाम हुआ है	११८
३५—इतना ही क्या मुझको कम है	१२०
३६—हिटलर मारा गया हो गई हार	१२२
३७—तू राम भजन कर प्रानी	१२७
३८—तुमने मुझको क्या समझा है	१२८
३९—ठंडी सड़क	१३१
४०—रोये जा	१३४
४१—रसिया	१३६
४२—तुम मिलीं	१३८
४३—आराम करो	१४१
४४—मैं भी बदला तुम भी बदलीं	१४६
४५—मैं भी अब हड़ताल करूंगी	१५२
४६—मुझको अपने घर पहुंचादो	१५६

४७—धोखा हुआ १५६
४८—अब तो मुझको स्वीकार करो १६२
४९—गलती पर पछताता हूं मैं १६४
५०—एक नई मुसीबत आई है १६७
५१—मैं कविता लिखना भूल गया १७१

अंजी सुनो....!

"उन" का पाकिस्तान

आज कलम की धार कुण्ठित, 'इन्कपाट' भी खाली है।
कविता कैसे नई लिखूं जब रूठ गई घरवाली है?

"ओ घरवाली! खामखयाली,
नाहक ही शमशीर निकाली,
वह शमशीर जो कि दुश्मन पर
कभी नहीं जाती है खाली।

अरे सुनो तो, सच कहता हूं
संगिन, रूपसि, रस की प्याली!
मैं कब गया सिनेमा, तू ने
रोनी सूरत व्यर्थ बनाली!

और देर से घर आने का
कारण भी सुन लो कल्याणी!
मिस्टर जिन्ना की सुनता था
आज रेडियो पर से वाणी।

उनकी वाणी—ऐसी मीठी,
ऐसी सुन्दर, ऐसी कोमल,
जैसी कभी-कभी खुश होकर
तुम मुझसे कहती हो रानी!

उनके तर्क अकाट्य, कि जैसे
तुम कर देती मुझे निरुत्तर !
ज्ञानवान वह ठीक तुम्हारी तरह
बुद्धि से पूर्ण, प्रखर स्वर !

वह भी करते हैं प्रमाण के सहित
सदा ही तीखी बातें,
कौन पराजित नहीं हुआ है
उनका भीषण भाषण सुनकर ?

लम्बी नाक, छरहरी काया,
सब कुछ मिल जाता प्रमाण है।
उनका पाकिस्तान तुम्हारे
पीहर बसने के समान है !"

"चलो हटो, मत मुझे सताओ
आये, बड़े बनाने वाले !
तुम ही फजलुल हक पूरे हो
जिन्ना मुझे बताने वाले !

अच्छा, मैं जिन्ना हूं ! क्या
कर लोगे ? लो अकड़े बैठी हूं।
मेरा पाकिस्तान मायका !
जाऊं ? अब मैं भी ऐंठी हूं।

ऐ राजाजी, क्यों फिर मेरे
चरण चूमने को आये हो ?

मैं न मानने वाली हूं तुम
चाहे जितना घबराए हो।

चलो हटो, बस दूर रहो जी,
हर दम जिगर जलाने वाले,
रोज-रोज दे वचन शाम को
देरी कर घर आने वाले!

मैं कहती हूं, आखिर तुमको
घर से क्यों इतनी नफरत है?
मर क्यों जाते नहीं, निर्दयी,
ठग, शैतान सिनेमा वाले!"

"हरे-हरे! क्या कहा सिनेमा?
यह आंखों का रोग भयंकर!
गांधीजी ने नहीं बताया
इसे गृहस्थों को श्रेयस्कर।

उतरी हाय नसीम, कि
कानन ने अब शादी कर डाली!
चिटनिस 'ओवरएज' बहुत
लम्बी है वह बनमाला आली!

इन्हें देखने मैं जाऊंगा?
तुम्हें छोड़कर घर की रानी!
तेरे एक-एक 'मोशन' पर
ये सब भर जायेंगी पानी।

अजी सुनो...!

मैं तो कभी नहीं जाऊंगा
आगे से अब सुनो सिनेमा।
मैं तो कभी नहीं आऊंगा
और देर से धीमा - धीमा।

ये जिन्ना ऐसे ही हैं जिस
जगह पड़ेंगे यहीं करेंगे,
लाओ भूख लगी है जल्दी
खाना दे दो लल्ला की मा।"

मई, १६४२]

पत्नी पर कण्ट्रोल करो

हे मजिस्ट्रेट महाराज ! हमारी पत्नी पर कण्ट्रोल करो !

गेहूं, शक्कर, घी, तेल, नमक,
माचिस तक पर राशनिंग हुआ,
तो यही एक क्यों बचे, प्रभो,
कुछ इसका भी तो मोल करो !

हे मजिस्ट्रेट महाराज···

मैं उन्हें लाख समझाता हूं,
कहता हूं छिड़ी लड़ाई है।
कम खाओ, बिल्कुल कम खर्चो,
दुनिया पर आफत आई है।

वह कहती हैं—"दुनिया पर आफत
कम है, तुम पर ज्यादा है।"
यदि और कहूं तो सच समझो,
लड़ने पर ही आमादा है।

वह कहती हैं—"कण्ट्रोल खाक,
तुम देखो उन बाबू के घर—
कल ही तो एक नई बोरी—
गेहूं की भर कर आई है।"

मैं हाय उन्हें क्या बतलाऊं
वे सैक्टर वार्डन हैं अपने,
पहले से नाम लिखाने की
वह हिम्मत अब फल लाई है।

फिर उनकी जान हथेली पर,
रहती है फर्जी हमले में,
उस मुकाबिले में खाक एक
बोरी उनके घर आई है।

पर यह सुन कब चुप रहती हैं,
यूं बड़े ठाठ से कहती हैं—
"लल्ला के चाचा! तुम भी कुछ,,
ऐसी ही जाकर पोल करो,

हे मजिस्ट्रेट महाराज···

घर में गेहूं के लाले हैं,
सन्दूकों पर भी ताले हैं।
हम बेकारी के घाले हैं,
पर उनके ठाठ निराले हैं।

: छः :

मैं परेशान हूं उनको ले,
वे मस्त हुई हैं मुझको पा,
कल ही तो एक नई चिट्ठी,
भाईजी को भिजवाई है।

लिक्खा है—"भाई, जल्दी से,
भाभी को लेकर आजाओ।
प्यारे मुन्नू की भोली-सी,
सूरत मुझको दिखला जाओ।

रुकना मत तुम्हें कसम मेरी,
तेरे जीजा कर रहे याद"
(है गलत बात) कैसे लिख दूं,
तुम मत आओ, घर रुक जाओ।

मुन्ने को कपड़े, भाभी को साड़ी,
भाई को कोट-पेंट;
घी, तेल, नमक, शक्कर, सूजी,
जल्दी लाओ, जल्दी लाओ।

यह भी लाओ, वह भी लाओ,
कैसे लाऊं, कण्ट्रोल हुआ।
फिर यह कब मुमकिन है उनके
आर्डर पर टालमटोल करो।

हे मजिस्ट्रेट महाराज...

तुम पर भी बड़ी मुसीबत है,
रह-रह कण्ट्रोल खतम होता।
मुझ पर भी बड़ी मुसीबत है,
रह-रह कर नया हुकुम होता।

तुमको भी डर है हुक्म-उदूली का,
साहब सच कहता हूं।
मैं भी अपनी 'घर-गवरमिंट' से,
परेशान ही रहता हूं।

मैं तुमको खूब समझता हूं,
तुम भी कुछ मुझ पर गौर करो।
मैं ठीक-ठीक ही बात आपकी,
अर्ज आज कर देता हूं।

पत्नी पर काबू पाने से,
कण्ट्रोल सफल होजाएगा।
हम-तुम दोनों का काम,
एकदम से हलका होजाएगा।

फिर देखें हिटलर कैसे बढ़
पाता है किसी मोर्चे पर।
जापान बिचारा कभी नहीं,
भारत में आने पाएगा।

फिर दुनिया के सारे ऊधम,
बिल्कुल समाप्त हो जायेंगे;

पत्नी पर कण्ट्रोल करो

गांधी चाहें मरजायँ, किन्तु,
हमको 'सुराज' मिल जाएगा।
मैं बात पते की कहता हूं,
मत सर को डांवाडोल करो।

हे मजिस्ट्रेट महाराज···

अप्रैल, १९४३]

डबल भैंस

ओ बाबूजी डबल भैंस !
मेरी कुटिया में घुस आई,
वह बाबूजी की डबल भैंस !
ओ बाबूजी की डबल भैंस !

वह काली - सी, मतवाली - सी,
क्यों बिना सूचना घुस आई ?
समझा होगा शायद तूने
इसको कालिज का खुला मैस !

ओ बाबूजी की···

मैं जीव - ब्रह्म का भेद, बीच में
माया का पचड़ा लेकर,
चल दिया आज सुलझाने को
युग-युग की विषम समस्याएं ।

हैं बाबूजी भी खूब, गले में
घंटी तलक न बांधी थी;

मैं चौंका, टूटा ध्यान, हाय !
भावों को भारी लगी ठेस
औ बाबूजी की···

उस रोज सुनहला मौसम था,
दिल रह-रहकर खोजाता था।
बादल छाये, बह रहा पवन
सूरज भी निकल न पाता था।

थी फूट पड़ी कविता मुझमें,
मैं बैठा छन्द बनाता था,
अपनी 'कल्पित-इच्छित'प्रेयसि का
रूठा प्यार मनाता था।

तो घर के बर्तन खनक उठे—
"क्यों दफ्तर आज न जाना है ?
लकड़ी लाओ, घी नहीं रहा,
लो उठो शाक भी लाना है।

तुम छोड़ो अपने गीत, मुझे
भी तो गीतों में जाना है।
जी, उठो-उठो क्यों देर कर रहे,
चूल्हा मुझे जलाना है।

बस बैठ गये कागज लेकर
कुछ और काम तो हुई नहीं,
हा ! फूट गई तकदीर, मौत भी
आती मुझको नहीं दई !

इससे तो बेहतर था गरीब
घसियारे को ब्याही जाती।
वह मुझसे कहता बात, और
मैं अपने मन की कह पाती।''

यों कह कागज फाड़ा उसने,
लौटी दवात सदमा खाके।
औ'कलम गिरी, कुचली कुर्सी से
दूर गिरा मैं भी जाके।

क्वेटा जैसा भूकम्प आज भी
आया था मेरे ऊपर।
है बाबूजी का दोष, भैंस
बांधी न गई घर के अन्दर।

यदि भैंस बंधी होती तो क्यों
हो पाता ऐसा विकट ''क्लेश''।

ओ बाबूजी की'''

हे भैंस! अभी तक मैं तुझको
अक्कल से बड़ी समझता था।
ऐ महिषी! अब तक मैं तुझको
अपरूप सुन्दरी कहता था।

तेरी जलक्रीड़ा मुझे बहुत ही
सुन्दर लगती थी रानी!
तेरे स्वर का अनुकरण नहीं
कर सकता था कोई प्राणी।

पर आज मुझे मालूम हुआ
तू निरी भैंस है, मोटी है!
काली है, फूहड़ है, थल - थल,
मरखनी, रैंकनी, खोटी है!

मेरे ही घर में आज चली
तू पाकिस्तान बनाने को?
मेरी ही हिन्दी में बैठी
तू जनपद नया बसाने को?

मैं कहता हूं हटजा - हटजा
वरना मुझको आरहा तैश!
ओ बाबूजी की···

अप्रैल, १६४०]

खोगई-खोगई

[१]

वह थी कलम,
फाउन्टेन कहा करता था,
लिखता था जिससे
नित्य पत्र सुसराल को,
क्योंकि श्रीमतीजी के
रिश्ते थे अनेक
और उन सबको
निबाहना जरूरी था।

मेरी मुनीम,
जो रोज लिखा करती थी—
धोबी का हिसाब,
नई लिस्ट खरीदारी की,
कर्ज दोस्तों का,
औ' अशेष हाल वेतन का,
सोते वक्त डायरी—

रिकार्ड गये जीवन का।
हाय चिरसंगिनी !
अजस्र मसि-धारिणी !
जो भावों के बिना ही
नये गीत लिख देती थी,
खुद न खरीदी
किसी मित्र की धरोहर थी,
आज देखी जेब तो
प्रतीत हुआ खोगई !
खोगई-खोगई !

[२]

बहुत दिन बाद
आज कविता जगी थी,
चित्र सुन्दर लगा था,
एक नया दृश्य देखा—
कि छवि चाहता था
आंकना उस मोहिनी की
जो मेरे पड़ोस के
मकान में अतिथि थी।
श्यामा थी।
सलौनी थी,
न शोड़षी थी, किन्तु
वह डेढ़ हाथ ही की
जन-मन को वेध लेती थी।

उसकी चपलता
अंग-भंगिमा,
दृगों के भाव—
सुन्दर थे,
भव्य थे,
समुत्तम थे,
बढ़िया थे।

बाबू कप्तानसिंह
शिमले से लाये थे,
वह झबरीली थी
विलायती नसल की,
साहब मजिस्ट्रेट
पाकर पसन्द होंगे
और 'रायसाहबी' के
चान्स बढ़ जाएंगे।
कुतिया नहीं थी
कामधेनु ही कहेंगे,
वह 'रायसाहबी' का
मानो स्वप्न साकार थी,
पपी कहा करते थे
बाबू कप्तानसिंह
घर में ममी से बढ़ी
उसकी वकत थी।

टांगें फैला के
थी पड़ी हुई कौच पर,

बाबू कप्तानसिंह
उसे सहला रहे थे,
मन्द-मन्द गारहे थे,
कोई अंग्रेजी गीत।

आज इसी छवि को
मैं गीतबद्ध चाहता था,
पैड जो निकाला तो
पपी ने मुझे धोखा दिया—
कोच पर से उछली
कि मेज पर उचक गई,
परदे में दुबकी
कि अन्दर खिसक गई,
खिड़की से कूदी
या किवाड़ से बिचक गई,
यहां गई, वहां गई,
नहीं-नहीं, कहां गई ?
ये गई-वो गई !

खोगई-खोगई !

[३]

इसी रंज-गम में
निमग्न कवि बैठे थे
कि अन्दर के कमरे का
सहसा खुला द्वार·····
श्रीमती पधारीं—

अजी सुनो···!

'कवि दुनिया में लौट चलो'
भोजन करने का भी
तकाजा किया बार-बार।
बोल उठी—
"कोई परवाह नहीं,
लेख जो न छपते हैं,
कविताएं लौटतीं
न चलती कहानियां,
मरे सम्पादक !
तुम्हें क्या पहचानें खाक !
मैं जानती हूं तथ्य
आपकी प्रगति का !
मरने दो किसी—
पत्रिका के सम्पादक को,
होने दो जगह रिक्त
रेडियो स्टेशन में,
फिल्मों में हिन्दी-गीत
अब चल निकले नाथ !
आप छोड़ दूसरा
बुलाया कौन जायगा ?

अस्तु, उठ बैठिए
बनाया है जिमीकन्द
मांगके पड़ौसिन से
पैसे कुछ उधार आज;

रद्दी इन किताबों की,
सचित्र अखबारों की,
सुनती हूं आजकल
तेज बिक जाती है।
मेरी ये किताबें!
जिन्हें जान से जुटाया है!
नाश्ते का खर्च काट
वी० पी० से मंगाया है!
खुद को ठगाया है,
वक्त पड़ने पर
होशियारी से उड़ाया है,
रद्दी की चीज हुईं!
शाक जिमीकन्द का!
पड़ोसिन के पैसों से!
जायंगे चुकाए
जो सचित्र अखबारों में—
जिनमें छपे हैं,
मेरे लेख, गीत,
एक-एक शब्द
अनमोल लाख रुपयों से!

शाक जिमीकन्द की
नहीं रही चाह मुझे;
तुझ-सी आश्रित,
अलौनी,
बेढंगी,

अजी सुनो···!

बुरी,

भौंड़ी,

पत्नी की नहीं नेक परवाह मुझे।

कविताएं लौटती हैं ?

फिल्म स्टेशन ?

पत्रिका के सम्पादक ?

मुझसे करती मजाक ?

हाय अकल खोगई !

खोगई-खोगई

सितम्बर, १९४०]

हिजड़िस्तान !

ए वायसराय महाराज !
हमारी भी मांगें मंजूर करो।
तुम एक नजर से ही सबको
देखा करते हो दलित-बन्धु !
ऐ, अल्पसंख्यकों के त्राता !
मत हमको दिल से दूर करो।

ए वायसराय महाराज…

हम बृहन्नला के वंशज हैं
लम्बा इतिहास हमारा है।
हमने ही पिछले 'भारत' में
वह भीष्म-पितामह मारा है।
तुम कोष-व्याकरण में खोजो
तो लिंग नपुन्सक पाओगे,
सबने हम लोगों की स्वतन्त्र
सत्ता को पृथक पुकारा है !

हम नारि-वर्ग में नहीं,
नहीं पुरुषों के दलमें आ सकते।
हम हिन्दू हरगिज नहीं,
नहीं मुस्लिम कहलाए जासकते।
है वर्ग हमारा अलग, जाति भी
पृथक, न भाषा मिलती है,
फिर कहो किसलिए नहीं पृथक
हम हिजड़िस्तान बना सकते ?
तो अये-हये ! हम लोगों के
मत सपने चकनाचूर करो।

ए वायसराय महाराज…

है भिन्न हमारा धर्म—
न शादी करते बच्चे जनते हैं।
है भिन्न हमारा कर्म—
किसी के पति-पत्नी कब बनते हैं।
भगवान सलामत रखे
हमारे ढोलक और मजीरों को,
हम नहीं नौकरी करते हैं,
हम नहीं किसी की सुनते हैं।

हम संख्या में थोड़े यद्यपि
पर व्यापक क्षेत्र हमारा है।
शादी विवाह में बिना हमारे
होता कहीं गुजारा है ?

हर हिन्दुस्तानी के दिमाग पर
दिल पर, कार्य-प्रणाली पर—
बापू से पूछो, हम लोगों का
या कि प्रभाव तुँम्हारा है?
तुम इसी बात को ले करके
वक्तव्य नया मशहूर करो।

ए वायसराय महाराज···

हम राजभक्त, विश्वासपात्र,
महलों में रहते आये हैं।
मुगलों के शासन में हरमों में
हमने दिवस बिताये हैं।
है कुछी दिनों की बात कि
वाजिदशाहअली के शासन में
हम मन्त्री थे, सेनानी थे,
हमने भी शस्त्र उठाये हैं।

तुम हमें इशारा कर देखो
फिर हम अपनी पर आते हैं।
जापानी हो या जर्मन हो
हम सबको मार भगाते हैं।
बन्दूकों का क्या काम
अजी, हम स्वयं बम्ब के गोले हैं!
तालियां हमारी तेज कि दुश्मन
सुनते ही भग जाते हैं।

सो इसीलिए गांधीजी से
मिलने को मत मजबूर करो।

ए वायसराय महाराज···

ऐ बापू - जिन्ना सावधान !
यह सुलह नहीं हो पायेगी,
जो अगर गलत कुछ कर बैठे
तो हिजड़ों से ठन जायेगी।
हम नहीं अहिंसा के कायल,
ढोलक की तोप अड़ा देंगे।
ये 'गांधीवाद' व्यर्थ होगा,
हम 'हिजड़ावाद' चला देंगे।

हम खुद ही ताली बजा-बजा,
अपना सन्देश सुनायेंगे।
हम चौराहे पर नाचेंगे,
भेड़ों की भीड़ बुलायेंगे !
ये अंग्रेजों का राज यहां,
अन्याय नहीं कर पाओगे।
आजादी से क्या काम हमें,
हम 'हिजड़िस्तान' बनायेंगे।
तुम राजाजी के साथ-साथ,
चाहे कोशिश भरपूर करो।

ए वायसराय महाराज···

[अक्तूबर, १६४४]

सुकुमार गधे !

मेरे प्यारे सुकुमार गधे !
जग पड़ा दुपहरी में सुनकर
मैं तेरी मधुर पुकार गधे !
मेरे प्यारे सुकुमार गधे !

तन-मन गूंजा, गूंजा मकान
कमरे की गूंजी दीवारें,
लो ताम्र-लहरियां उठीं मेज
पर रखे चाय के प्याले में;
कितनी मीठी, कितनी मादक,
स्वर, ताल, तान पर सधी हुई
आती है ध्वनि, जब गाते हो
मुख ऊंचा कर, आहें भर कर
तो हिल जाते छायावादी
कवि की वीणा के तार गधे !

मेरे प्यारे

तुम दूध, चांदनी, सुधा-स्नात,
बिलकुल कपास के गाले-से,

हैं बाल बड़े स्पर्श सुखद—
आंखों की उपमा किससे दूं ?
वे कजरारे, आयत लोचन
दिल में गढ़-गढ़ कर रह जाते,
कुछ रस की बेबस की बातें
जाने-अनजाने कह जाते,
वे पानीदार, कमानी-से,
हैं श्वेत-स्याम-रतनार गधे !
मेरे प्यारे···!

हैं कान कमल-संपुट से थिर,
नीलम से विजड़ित चारों खुर,
मुख कुन्द-इन्दु-सा विमल,
कि नथुने भँवर सदृश गंभीर, तरल,
तुम दूध नहाये-से सुन्दर,
प्रति अंग-अंग से तारक दल
ही झांक रहे हों निकल-निकल,
हे फेनोज्ज्वल, हे श्वेत-कमल,
हे शुभ्र अमल, हिम-से उज्ज्वल,
तेरी अनुपम सुन्दरता का
मैं सहस कलम ले करके भी
गुण-गान नहीं कर सकता हूं;
फिर तेरे रूप-सरोवर की
मैं कैसे पाऊं पार गधे ?
मेरे प्यारे···!

सुकुमार गधा

तुम अपने रूप शील, गुण से
अनजान बने रहते हो क्यों ?
ऐ ,लात फेंकने में सकुशल !
पगहा-बंधन सहते हो क्यों ?

तुम भी अमरीकन रमणी का
सचमुच दुलार पा सकते हो।
तुम भी मिस नरगिस के संग में
नित 'वाकिंग' को जा सकते हो।

आई० सी० एस० के बंगले की
तुम भी शोभा हो सकते हो।
तुम भारतीय ईसाई - से
कुल का कलंक धो सकते हो।

ए साधु, स्वयम् को पहचानो,
युग जाग गया तुम भी जागो।
क्यों शासित होकर रहते हो
मन की कायरता को त्यागो।

इस भारत के धोबी-कुम्हार
भी शासक पूंजीवादी हैं।
तुम क्रान्ति करो, लादी पटको,
बर्तन फोड़ो, घर से भागो।
ऐ प्रगतिशील युग के प्राणी !
तुम रचो नया संसार गधे !
मेरे प्यारे...!

अक्तूबर, १९४२]

पति के मित्र

मुझको न गलत समझो नारी,
मैं मित्र तुम्हारे पति का हूं!

मैं सज्जन हूं,
सन्तोषी हूं,
अच्छे कुल का हूं,
पढ़ा - लिखा।

हूं सुरुचि - शील - संपन्न,
स्वस्थ—तन से, मन से,
मैं मानवीय दुर्बलताओं को
पास नहीं आने देता,
जिससे शिव, ब्रह्मा, नारद,
विश्वामित्र-सरीखे हार गये,

लक्ष्मी, रानी !
तुम सच समझो
मैं कुछ ऐसी ही मति का हूं।
मैं मित्र तुम्हारे पति का हूं!

कल रासपुटिन की आत्मकथा
जो मित्र मांगकर लाये थे,
वह पुस्तक भद्दी, गन्दी है,

पड़ जाय न घर में हाथ किसी के,
वापस लेने आया हूं,

मैं दृढ़ चरित्र का व्यक्ति,
मुझे इन बातों से
बेहद नफरत।
ऐ सहज सुशीले!
सच कहता—

मैं सीधी-सादी गति का हूं!
मैं मित्र तुम्हारे पति का हूं!

मैं नहीं झांकता ऊपर को
मन में रख कोई भिन्न अर्थ,
और ऐसा भी है नहीं—
कि आंखें मेरे वश में न हों,
कि जिसने मन वश में कर रखा—
कि जैसे भारत की नारी
रहती पति के वश में।
माना तुम सुन्दर हो सचमुच
शायद तुममें आकर्षण है,
पर यह सब ही पर्याप्त नहीं,
मेरे मन को छल सकने में;
मैं 'पत्नीव्रत' का पालक हूं
बालकपन ही से शिष्य रहा,
मैं एक कनफटे यति का हूं!
मैं मित्र तुम्हारे पति का हूं!

अजी सुनो···!

मैं आर्यसमाजी नहीं, बहनजी !
मुझे सुधारक मत समझो,
अब तक लखनऊ न गया,
रहा यूंही पढ़ने का शौक,
पढ़ा फ्रायड, उलटा है मार्क्स,
अनातोले, मोपासा ऊँचे,
धन्य हैं मेघदूत के कवि,
मुझे विद्यापति बहुत पसन्द,
बिहारी, तुलसी, देव, रहीम,
आदि की रचनाएं तुम पढ़ो,
सरस कितनी है उनकी उक्ति,
भाव कितने हैं उनके उच्च,
चित्र कितने हैं उनके भव्य;
और इस युग के श्री जैनेन्द्र,
'सुनीता' उनकी कृति उदार,
इसे पढ़ना अवश्य सुकुमारि,
यही अनुनय है बारम्बार,
तभी तो समझोगी तुम देवि,
बात का मर्म, देह का धर्म !
खैर मुझको इससे क्या इष्ट;
अरे, मैं गृही, निस्पृही, साधु !
विरोधी रति का, रती बिरति का हूं !
मैं मित्र तुम्हारे पति का हूं !

जून, १९४२]

हिन्दी का अध्यापक !

मैं हिन्दी का अध्यापक हूं !
मेरे भी लम्बी चुटिया है,
है बन्द गले का कोट,
गोल टोपी,
लम्बा सिर, पूरा तन,
मैं खम्बा-सदृश,
चलायमान युग में हूं खड़ा हुआ अविचल;
अपने कालिज के घेरे में
'पंडितजी' कहकर व्यापक हूं !
मैं हिन्दी का अध्यापक हूं !

कुछ पत्नी से, कुछ बच्चों से,
कुछ ट्यूशन, कुछ यजमानी से,
मुझको कब फुरसत मिलती है—
दुनिया के नये समाचारों को,
अखबारों को,
सुन लेने की,
पढ़ पाने की ।

अजी सुनो…!

फिर इस जग की नूतन चीजें,
नूतन खबरें,
नई व्यवस्था—
हैं अस्पृश्य,
अदृश्य,
मोहमय,
सब छलना है,
सब जड़ता है,
धोखा है,
सब प्रवंचना है,
इनसे जितना सम्भव होवे,
दूर-दूर रहना श्रेयस्कर!
इसी नीति से जगतीतल की
रीति-नीति का मापक हूं!
मैं हिन्दी का अध्यापक हूं!

सूर, कबीरा,
तुलसी, मीरा,
केशव की कविताओं का
मिनटों में अर्थ बता सकता हूं,
अलंकार के भेद-प्रभेदों का
आशय समझा सकता हूं,
इससे भी आगे बढ़कर
मैं शब्द-शक्ति पर
और व्यंग्य पर
चुप न रहूंगा

जगह-जगह पर
अपनी टांग अड़ा सकता हूं।

पर—
लड़के कम्बख्त,
पूछते मुझसे पंत, निराला, बच्चन !
अलंकार की जगह पूछते—
मुझसे रचना-शैली, मीटर,
ध्वनि-रसवाद विहाय, पूछते—
छायावाद—प्रगति में अन्तर !
हाय, पूछते—
जयशंकर की कविताओं के अर्थ निराले !
कहो क्यों नहीं मर जाते हैं
इन्हें कोर्स में रखने वाले ?
कभी पूछते—
पंडितजी, कवि के मन में पीड़ा क्यों होती ?
मैं कहता—
गुमराह होगये हैं
ये सब कवि हिन्दी वाले।
घर के गीत,
प्रकाशक अपने,
जो लिख मारा, छपा लिया सब,
अन्धे पाठक झूम-झूमकर
व्यर्थ हुए जाते मतवाले !
लड़के हंस पड़ते उत्तर सुन

'अजी सुनो'''!

चन्द लड़कियां मुस्का देतीं,
मैं भी हंस पड़ता
अपने उत्तर की गुरुता का खयाल कर,
इसीलिए समझे बैठा—
खुद को विद्वान विलाशक हूं !
मैं हिन्दी का अध्यापक हूं !

जुलाई, १६४३]

हटो, मुझे भरती होने दो !

अब मुझको भरती होने दो !
रोको मत, भरती होने दो !

जीवन में रस शेष रहा क्या ?
अब भी और विशेष रहा क्या ?

दो-दो बार गया
उनके मैके—
वापस लेने को मैं;
पर आना तो दूर
सहज मुस्काकर
आदर कर न सकीं,
जी भर न सकीं
मेरा अपनी मीठी—
मीठी प्यारी बातों से,
आहों से, आहत
दिल को—तर
कर न सकीं—
खुद जान-बूझ कर !

अजी सुनो···!

मैं कोशिश करता रहा—
कहीं मिल जायं·—
तो अपना सर पटकूं,
कर पकड़ूं, चूमूं चरण
और अपने मन की
सब व्यथा कहूं—

"श्रीमती, सुनो," कहदूं उनसे
मैं अब न मैस में खा सकता।
रस से भीगी बरसातों को
सूने में नहीं बिता सकता।

पर आना-सुनना दूर रहीं—
बचती-सी हाय निगाहों से।
मैं असफल होकर फिरा, प्राय,
सम्भावित सभी उपायों से।

अब रोती हैं तो रोने दो!
मुझको तो भरती होने दो!!

जून, १९४२]

ले नाच जम्हूरे…… !

तू दल्ली में बसजा, बसजा,
सरकार यहां पर बसती है।
ट्यूशन भी जल्दी मिलती है,
हर चीज़ यहां पर सस्ती है।

चांदनी चौक, बारहखम्बा,
बिरला-मन्दिर के आस-पास,
तू रोज घूमने जाया कर
तबियत भी यहां बदलती है।

जो रोज घूमने जाएगा,
तो नई रोशनी पाएगा।
दो-चार दिनों के चक्कर में
कविता लिखना आजाएगा।
क्या, मिलते नहीं मकान,
अरे लेकर मकान क्या करना है ?
तू दिन में धन्धा देख, रात,
गुरुद्वारे में सो जा एकदम !

ले नाच जम्हूरे छम-छम-छम !
छम-छम-छम-छम !

सितम्बर, १९४२]

मेरे साजन !

मेरे साजन, मेरे साजन !

(विलायती)

वे आठ बजे पर उठते हैं,
उठते ही चाय मंगाते हैं।
फिर लेकर के अखबार—
'लैट्रिन' में सीधे घुस जाते हैं।

वापस घन्टे में आते हैं,
आते ही 'शेव' बनाते हैं।
फिर लिये तौलिया कन्धे पर
हर रोज गुसल को जाते हैं।

होगया गुसल का द्वार बन्द
मैं सुनती हूं कुछ मन्द-मन्द
वे नये सिनेमा के गीतों को
लहजे से दुहराते हैं।

आते ताजा - ताजा होकर
फिर सर में कंघा देते हैं।
शीशे में देख हँसा करते
होठों में मुस्का देते हैं।

वे पैण्ट पहन कर खड़े हुए,
मैं उनको कोट पिन्हाती हूं।
मोजे - जूते पहना कर के
फीतों में गांठ लगाती हूं।

वे टाई अपनी बांध रहे,
मैं 'नाट'-गांठ सुलझाती हूं।
वे मुंह पर हाथ मसलते हैं,
मैं शीशा उन्हें दिखाती हूं।

मैं आगे - पीछे दौड़ - दौड़
कपड़ों की 'क्रीज' सम्हाल रही।
टेबुल पर लाकर 'डिनर' रखा
कुर्सी पर उन्हें बिठाल रही।

वे ना - ना करते जाते हैं,
मैं जबरन उन्हें खिलाती हूं।
वे जब - जब मुझे देखते हैं,
मैं तब - तब ही मुस्काती हूं।
मेरे साजन, मेरे साजन !

(देखी)

सोने का उनका समय नहीं,
उठने का उनका समय नहीं।
मैं उन्हें जगाकर, गाली
खाने की करती हूं खता नहीं।

वे असमय - कुसमय उठते हैं,
उठते ही कलम उठाते हैं।
मैं कहती हूं 'बिस्तर छोड़ो'
वे 'जरा रुको' फरमाते हैं।

जब घड़ी बजाती साढ़े नौ
तब कहीं पखाने जाते हैं।
वापस मिनटों में आते हैं,
न्हाते हैं, कभी न न्हाते हैं।

जैसे ही वे वापस आये
मैं भोजन उन्हें परोस रही।
वे जल्दी - जल्दी खा चलते,
मैं अपना हृदय मसोस रही।

वे कोट पहनते जाते हैं
मैं उनकी छड़ी टटोल रही।
उनका रूमाल खोगया कहीं
मैं गठरी - पुठरी खोल रही।

वे दफ्तर जाने को होते
मैं अपना सबक सुनाती हूं।
यह नहीं, वह नहीं, यह लाना,
वह लाना, याद दिलाती हूं।

वे कोट छुड़ाकर भाग चले,
मैं पीछे-पीछे जाती हूं।

दरवाजे तक आये न हाथ
तो तेजी से चिल्लाती हूं—

"मंगल है आज शीघ्र आना
मैं महावीरजी जाऊंगी।
मुन्ना को आया था बुखार
उसका परसाद चढ़ाऊंगी।"

मेरे साजन—मेरे साजन!

जनवरी, १६४४]

कुछ नहीं समझ में आता है !

कुछ नहीं समझ में आता है।
जी, उनको क्या है मर्ज, नहीं कोई भी ठीक बताता है।
कुछ नहीं···।

मैं वैद्य-डाक्टरों को लाया,
कहते हैं—कोई इलाज नहीं।
हँसते हैं, मुझे बनाते हैं,
आती है उनको लाज नहीं !
अम्मा से कहता, कहती हैं—
"ऐसा तो हो ही जाता है।"
भाभी को देखो, मुझे छेड़ने
से आती हैं बाज नहीं।

मैं जहां कहीं भी जाता हूं
वह दिखलाता लाचारी है।
हो जिसका नहीं इलाज, अजी,
ऐसी यह क्या बीमारी है ?
मैं उनसे कहता हूं—"कट्टो",
जर्मन क्यों पानी मांग गया ?"
तो ऐसे मुझे घूरती हैं,
गोया मेरी मक्कारी है !

पर मुझको तो अपना कसूर
कोसों तक नहीं दिखाता है!
कुछ नहीं···।

लो, तुम भी सुनो हाल यह है
यह पीली पड़ती जाती हैं।
हर वक्त जम्हाई लेती हैं,
अलसाई - सी दिखलाती हैं।
वे ऐसा लगती हैं, मानो—
दर्पण पर धूल छागई हो,
वे अनखाई - सी रहती हैं,
अनखाई ही रह जाती हैं!

कुछ चक्कर - से आते उनको
मैं सर सहलाया करता हूं।
वे उड़ी - उड़ी - सी रहती हैं,
तबियत बहलाया करता हूं।
कुछ उनमें भगती-भाव आजकल
अनदेखा बढ़ आया है,
मैं तुलसीकृत रामायण का
बस पाठ सुनाया करता हूं!
मुझसे तो असमय में उनका
वैराग्य न देखा जाता है!
कुछ नहीं···।

वे ऐसी नाजुक हुई, न
नीचे-ऊंचे ज्यादा जा सकतीं।

फिर यह कब मुमकिन है—कि
बोझ की चीजें अधिक उठा सकतीं।
यों मन उनका चलता रहता है
तरह-तरह की चीजों पर;
लेकिन कुछ ऐसा हुआ—
सुबह का खाना ठीक न खा सकतीं!

कुछ ऐसा उनको हुआ—कि
खट्टी चीजें अक्सर भाती हैं।
नौकर को चुपके भेज, चटपटी
चाटें अधिक मंगाती हैं।
पर इतना तो है ठीक मगर
हैरत में हूं यह देख-देख
कोरे मिट्टी के बर्तन को
क्यों फोड़-फोड़कर खाती हैं?

शायद इस कारण ही उन पर
पीलापन चढ़ता जाता है।
कुछ नहीं···।

मित्रो, कुछ मुझे बताओ तो—
क्यों तेज नहीं चल पाती हैं?
क्यों जल्द पसीना आता है,
ओठों पर जीभ फिराती हैं!

क्या हुआ कि साड़ी भी जैसे
बांधना अचानक भूल गईं;

कुछ तुन्दिल-तुन्दिल नरम-नरम,
खरबूजे - सी दिखलाती हैं।

मैं छै महीने से परेशान
आराम नहीं मिल पाता है।
उनकी इस "हौं-हौं-हौं-हौं" से
दिल मेरा बैठा जाता है।
होगई जवानी व्यर्थ, हाय,
शृंगार नहीं, रोमांस नहीं,
अब "माया" के बदले घर में
"बालक" मंगवाया जाता है।
कुछ नहीं···।

जो लिखी न हो घरवाली पर

दफ्तर ने कविता मांगी है,
जो छापी जाय दिवाली पर।
फिर शर्त लगाई है ऐसी,
जो लिखी न हो घरवाली पर।

तो मेरी सरस्वती बोलो,
मैं क्या गाऊं, कैसे गाऊं ?
तुझ रसवन्ती को छोड़,
कल्पना, और कहां ले मैं लाऊं ?

यों दुनिया में नर हैं, पंछी हैं,
ऊंट, पहाड़, नदी - नाले।
पर मुझको तो अच्छे लगते,
ये तेरे सेव मिरच वाले !

हां, सुनो, दिवाली है तुमने,
इस बार न सेव बनाए हैं।
गुंझिया, पपड़ी सूजी-बेसन के
लड्डू, नहीं चखाये हैं।

औ, दहीबड़े, रहने भी दो,
तुम अब बूढ़ी होती जातीं।

कुछ याद नहीं, कुछ स्वाद नहीं,
रसवाद सभी खोती जातीं।

"तुम बूढ़े होगे, बड़े मुझे
बूढ़ी बतलाने आये हो।
शीशे में लो चेहरा देखो,
तुम खुद लगते बुढ़ियाए हो।

ये नाक तुम्हारी उचकी - सी,
ये गाल तुम्हारे बैठे हैं।
ये आंख तुम्हारी तिर्रे-फिट्ट-सी,
कान तुम्हारे ऐंठे हैं।

ये दांत तुम्हारे तिड़बंगे,
है कमर कमन्द-कमानी-सी।
हैं ढंग तुम्हारे ताऊ - से,
और चाल तुम्हारी नानी-सी।"

ओहो, इस छबि का क्या कहना,
बलिहारी है, बलिहारी है।
यह सूप विचारा हार गया,
चलनी ने बाजी मारी है।

मैं इसीलिए तो कहता हूं,
तुम बुद्धिराशि हो कल्याणी!
उर्वशी, इन्दिरा, गिरा, उमा,
सब भरती हैं तुम से पानी।

क्या उर्वर बुद्धि तुम्हारी है !
क्या मौलिक बात बिचारी है !
कैसी उपमाएं देती हो,
कम्युनिस्टिक-सूझ तुम्हारी है !

हां, माना लम्बी नाक तुम्हारी,
ऊंची सूआसारी है।
हां माना, आंख तुम्हारी ऐसी,
जैसी खुली कटारी है।

हां माना दांत तुम्हारे मानो,
दाड़िम के-से दाने हैं।
हैं पाम तुम्हारे हाथी के-से,
काम बड़े मरदाने हैं।

"पाम तुम्हारे हाथी के-से
होंगे मुझे बनाते हो ?"
मैं भूल गया मेरा मतलब,
गजगामिन था, "बहकाते हो ?"

तुम शायद यह समझे बैठे,
यह अपढ़ बे-समझ नारी है।
इससे जो चाहो सो कहदो,
क्या समझे बात बिचारी है।

पर मैं वकील की बेटी हूं,
पंडित के कुल में ब्याही हूं।

जो लिखी न हो घरवाली पर

मैं शत्रु-विरोधी तर्कशास्त्र,
तो घुट्टी में पी आई हूं।"

पर तर्कशास्त्र की प्रमुख पंडिते!
पाकशास्त्र भी आता है ?
या लाल किले पर अभी तलक,
यूनियन जैक लहराता है ?

"जी नहीं, यहां सब कुछ तयार है,
खील - बताशे ले आओ।
'जय-हिन्द', 'चलो दिल्ली' की
रौनक आज शाम को दिखलाओ।"

अक्टूबर, १९४५]

पत्नीव्रत

संवत दुइ हजार के माहीं।
सीला गई सुसीला पाहीं॥
हाथ मिलाइ निकट बैठारी।
चाय-पात्र धरि दियो अगारी॥

टोस्ट--बटर--बिस्कुट मंगवाए।
जे नित नूतन अमल सुहाए॥
आलूचाप मंगाय नवीनी।
'मिसिज श्याम' ताजा कर दीनी॥

चुसकत चाय सुसीला बोली।
मानहु चौंचि कोकिला खोली॥
कहत सुसीला अति मृदुबानी।
'पत्नीव्रत' अब सुनहु सयानी॥

नारि जाति कहं अति सुखकारी।
पुरुष-धर्म सुन सीला प्यारी॥
बड़े भाग्य बिध नारी देही।
अधम सो पुरुष जो सेइ न तेही॥

धीरज, धर्म, मित्र, भर्तारी।
आपद-काल परखिए चारी॥
बूढ़ी, रोगिन, जड़, मतिहीना।
अंधी, बहरी, कलह-प्रवीना॥
ऐसिहु तियकर किय अपमाना।
पुरुष पाव यमपुर दुख नाना॥
एकै धर्म, एक व्रत-नेमा।
काय-वचन-मन तिय-पद-प्रेमा॥
जग पत्नी-व्रत चार कहाहीं।
वेद, पुरान, सन्त अस गाहीं॥

उत्तम, मध्यम, नीच, लघु, सकल कहहुं समझाय।
सुनत पुरुष सब भव तरहिं, सुन सीला चितलाय॥

उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपनेहु आनि नारि जग नाहीं॥
मध्यम पर तिय देखहिं कैसे।
माता, बहिन, पुत्रि निज जैसे॥
धर्म-विचार समुझि कुल रहहीं।
सो निकृष्ट पति श्रुति अस कहहीं॥
बिनु अवसर भय ते रह जोई।
जानहु अधम पुरुष जग सोई॥
पत्नी सँग जो पति छल करहीं।
रौरव नरक कल्प-शत परहीं॥
क्षण सुख लागि जनम शतकोटी।
दुख समुझै न भई मति खोटी॥

अजी सुनो…!

जो पत्नीव्रत छल तजि गहहीं।
बिन श्रम पुरुष परम गति लहहीं॥
पत्नी विमुख जनम जहं जाई।
रंडुआ होइ पाइ तरुनाई॥

परम पावनी नारि, पति सेवहिं, शुभगति लहति।
जस गावत अखबार, अबहु सिम्पसन जगत-प्रिय॥
सुमिरि तिहारो नाम, पति सब पत्नीव्रत करहिं।
तेरे सेवक स्याम, कही कथा संसार हित॥

जुलाई, १६४४]

नया रोजगार

अब से पहले सम्पादक था
एक नये, सुन्दर मासिक का ।
हिन्दी के बाजार - भाव पर
जिसका जमा हुआ था सिक्का ।

बड़े ठाठ थे, बड़े रौब थे,
नाम-गाम ऊँचे थे भाई ।
मगर व्यर्थ होगये, जब कि
संचालकजी से हुई लड़ाई ।

हमने कहा कि संचालकजी,
ले लो अपनी लाल पैंसिल,
ले लो अपनी छोटी कैंची,
ले लो सम्पादक की डिगरी,

अपने पहले भूल लगाने से ही
काम निकल जाएगा ।
है कुछ दिन की बात
दूसरा काम शीघ्र मिल जाएगा ।

लेखक हूं मैं लिख-लिखकर ही
अपना काम चला सकता हूं ।

खुद अपने को छोड़ और
दो को भी बैठ खिला सकता हूं।

लिक्खूंगा मैं लेख फड़कते
सैक्स-तत्व, सौन्दर्य-शास्त्र पर,
नारिवर्ग की आजादी पर,
उनके शिक्षा - संस्कार पर।

राजनीति के हर पहलू पर
अपना बल दिखला दूंगा मैं।
हिन्दी भाषा, सम्मेलन में
नई रोशनी ला दूंगा मैं।

कैसे होता है प्रचार
अखबारों के हल्ले की हरकत,
क्या रंग लाती है, टीकमगढ़
को भी सबक सिखा दूंगा मैं।

हर महीने मैं लिखा करूंगा
एक नई पुस्तक अलबेली।
विषय चटपटा, गैटऽप सुन्दर,
अपने ढंग की एक अकेली।

मित्र लिखेंगे समालोचना,
ठेलों में वह बिका करेगी।
मेलों में विज्ञापन होगा,
खूब खपेगी, खूब छपेगी।

हाय लड़ाई ! स्वप्न भंग होगया
नहीं कागज मिल पाता।
लिखी पुस्तकें रखीं, इन्हें
रद्दी के भाव न पूछा जाता।

अखबारों से लौट-लौटकर
लेख - कहानी वापस आते।
बड़ी शिष्टता और सभ्यता से
यूं सम्पादक फरमाते—

"प्रियवर, कागज की तेजी में
पुरस्कार होगया असम्भव।
आगे और न कष्ट करें,
हम स्वयं मँगा लेंगे होगा जब।"

हमने कहा कि सम्पादकजी,
चाटें अखबारों के पन्ने।
ले लें पुरस्कार खुद ही सब
ऊँची कुर्सी पर डट करके।

(अरे) कवि हूं कविता पढ़-पढ़कर ही
अपना रंग जमा सकता हूं।
कालिज के लड़की-लड़कों को
चुटकी में बहका सकता हूं।

आखिर गला सुरीला मेरा
और काम आयेगा किस दिन ?

लम्बे बाल, लचकली काया का
क्या और बनेगा भगवन्!

हूं यथार्थ में छायावादी,
लिखता हूं 'रोमान्स' गीत मैं।
प्रेम तत्व है नारि पहेली,
श्रद्धा रखता हूं अतीत में।

पर मैं युग के साथ चलूंगा
इन्कलाब का हाथ पकड़कर।
'प्रगतिशील पथिकों' की टोली में
आऊंगा आगे बढ़कर।

'रूस जयी हो'—कम्यूनिस्ट हूं,
चीन-मित्र—फासिस्ट विरोधी।
मजदूरों का नेता हूं मैं
विप्लववादी कवि हूं क्रोधी।

उधर रईसों की महफिल में
अचकन सजकर जाऊंगा मैं।
सानुप्रास मधुर वाणी में
झुक आदाब बजाऊंगा मैं।

खन्नाजी का ब्याह या कि
लालाजी के लड़के का मुण्डन,
जहाँ कहीं कवि-सम्मेलन हो
सुनकर दौड़ा जाऊंगा मैं।

नया रोजगार

भारतवर्ष बहुत विस्तृत है
मैं अपने ढंग का पहला कवि;
थोड़े दिन के भीतर ही बस
खूब नाम पा जाऊंगा मैं।

आयेंगे फिर मुझे निमन्त्रण,
दूर - दूर कवि - सम्मेलन से,
ले 'सैकिन' का खर्च, थर्ड से
ही बस टिकट कटाऊंगा मैं।

हाय लड़ाई ! रेल बन्द होगईं
टिकट कब मिल पाती हैं ?
हुए निमन्त्रण व्यर्थ कि कविता
लिखी-लिखी ही रह जाती हैं।

मैं निराश होगया, किन्तु
फौरन ही सूझ उठी अन्तर से।
बाँध बिस्तरा बिना कहे ही
निकल पड़ा मैं अपने घर से।

मेरे घर पर मत कह देना,
मैं दिल्ली से बोल रहा हूं।
पढ़ना - लिखना छोड़, हजामत
की दुकान मैं खोल रहा हूं।

कवि, लेखक और पत्रकार
इन तीनों को ही नमस्कार कर,

अजी सुनो'''!

सिल्ली पर मैं रगड़ उस्तरा
उसकी धार टटोल रहा हूं।

दो आने दाढ़ी के लेकर
छै आने में बाल छाँटता।
बड़े - बड़े अफलातूनों की
मूंछों के मैं धाल काटता।

मैं स्वतन्त्र हूं, संचालक की
धमकी मुझको नहीं डराती।
मैं प्रसन्न हूं, लेख लौटने की
अब नहीं मुसीबत आती।

मेरे ग्राहक सुनते हैं मेरी
कविता को बड़े चाव से।
'कला कला के लिए' छन्द
लिखता हूं मैं स्वच्छन्द भाव से।

जून, १९४४]

अब नया धर्म निर्माण करो !

अब नया धर्म निर्माण करो !
दरवाजे से ही कुशल पूछ, वापस अपना महमान करो !
मित्रों से बात करो घुल-घुल,
बेशक उनको घर आने दो।
यदि भेंट कभी ले आते हैं,
अच्छा है, उनको लाने दो।
पर इस कन्ट्रोल-काल में ऐसी
गलती कभी न कर देना,
जो कह बैठो उनसे झट यों–
आओ, प्रियवर, जलपान करो।
अब नया धर्म० !

झूंठी कथा—खिलाना पड़ता,
मिथ्या यज्ञ—कहाँ है आहुति ?
श्राद्ध-कर्म में जलाञ्जली ही
श्रेष्ठ बताती आई है श्रुति !
तीर्थ-पर्यटन करने को अब
रेलें कहो कहाँ मिलती हैं ?
अरे, "शेल्टर" की समाधि में
स्वयं मिलेगी पड़ी धर्म-द्युति !

नल पर यदि कन्ट्रोल न हो तो
तुम संध्या बेशक कर डालो।
भूखे रहकर करो प्रार्थना
अपना अगला जनम बनालो।
ब्राह्मण - भोजन पुण्य-कार्य में
आज सहायक हो न सकेगा,
स्वर्ग-प्राप्ति के लिए व्रतों का
ही सर्वत्र विधान करो।
अब नया धर्म० !

मरने वालों से कहदो तुम—
मरो नहीं, कन्ट्रोल लगा है।
रुके रहो बच्चो प्रसूति में
अभी नहीं कन्ट्रोल हटा है।
बच्चों के शादी - विवाह मुल्तवी
करो तुम युद्ध काल तक,
जो जल्दी करते हों उनसे
कहदो—रे, कन्ट्रोल लगा है।

हुक्म नहीं जो यह मानेगा
वह डिफैंस में आजाएगा।
मरने - जीने से पहले ही
ठीक सजा वह पाजाएगा।
प्रेमी-प्रेमिक ! किसी ज्योतिषी से
ही अपनी उम्र पूछकर,

खैर मनाकर ही अपना वह
प्रेम-बाण सन्धान करो।
अब नया धर्म० !

इस भारत के पुरुष पुरातन
कन्द - मूल खाकर रहते थे।
अपरिग्रही अमित सन्तोषी
जो पड़ती थी सब सहते थे।
तुम उनकी सन्तान ! पेट में
कोठी है, या गुफा विधाता !
छै छटाँक, हाँ छै छटाँक से
भी सन्तोष नहीं हो पाता !

दस छटाँक कम एक सेर को
कौन बताता है कम खाना ?
बन्दर की सन्तान मनुज ने
गेहूं खाना कब से जाना ?
अधिकारों के लिए झगड़ना
हिन्दू कब से सीख गये हैं ?
ज्वार, बाजरा, मक्का खाकर ही
पैदा सन्तान करो।
अब नया धर्म० !

अप्रेल, १९४३]

मैं अवसरवादी नेता हूं !

मैं अवसरवादी नेता हूं !
विधना से यही चाहता हूं,
मैं सारी रात जागता हूं,
मैं दिन-भर यही सोचता हूं—

सरकार सुपथ पर अड़ी रहे,
कांग्रेस जेल में पड़ी रहे,
जिन्ना को लेकर 'लीग' सदा ही
दूर अकेली खड़ी रहे।

बस यही वक्त है जनता में
अपना विश्वास जमाने का।
बस यही वक्त है गई लीडरी को
फिर वापस लाने का।

बस यही वक्त है बार - बार
रह - रहकर दिल्ली जाने का।
बस यही वक्त है जीहजूर कह
कौंसिल में घुस जाने का।
मैं यही सोच, अनुकूल वायु पा,
अपनी नौका खेता हूं।
मैं अवसरवादी नेता हूं !

मैं अवसरवादी नेता हूं

जिस समय कांग्रेस रंग पर थी,
मैं खद्दर शुद्ध पहनता था।
उसकी जिस समय बजारत थी,
मैं भाषण देता फिरता था।

मैं भी 'हरिजन' का ग्राहक था,
बस अनुशासन पर चलता था।
मेरे घर में यरवदा-चक्र पर
बढ़िया सूत निकलता था।

जब हुआ व्यक्तिगत आन्दोलन,
मैंने खुद को बीमार किया।
मित्रों से आँख बचा करके
घर में छुपना स्वीकार किया।

यह एक समय की नहीं बात
इक्किस, इकतिस, इकतालिस में,
जब-जब जैसा मौका आया
वैसा ही रुख अख्यत्यार किया।
खतरे के समय कांग्रेस को
मैं नमस्कार कर देता हूं।
मैं अवसरवादी नेता हूं!

मैं 'महासभा' की गति-विधि को
भी देख रहा हूं ठीक तरह।
मैं 'निर्बल-दल' के सम्मेलन में
भी जाता हूं जगह - जगह।

मैं ढूँढ़ रहा हूं गुण - अवगुण
सब पाकिस्तान - योजना के,
देखो टेबिल पर पड़ी हुई है
'अखण्डभारत' पुस्तक यह।

मैं देख रहा हूं युद्ध अभी
कितना लम्बा जासकता है।
मैं सोच रहा हूं समय अभी
कितना पलटा खासकता है।

मैं समझ रहा हूं कौन कहाँ पर
त्याग - पत्र दे डालेगा,
फिर किस तिकड़म से उस पद पर
मेरा नम्बर आ सकता है।
मैं इसीलिए ही बड़े लाट से
कभी - कभी मिल लेता हूं।
मैं अवसरवादी नेता हूं।

चाहे कोई आगे आये
हो लीग, सभा या निर्दल-दल।
तुम मुझको आगे पाओगे
पहली कतार में खड़ा अटल।

मैं तुम्हें बताए देता हूं
सत्ता मेरे कर में होगी,
मैं अमित पराक्रम, क्षिप्रबुद्धि,
मुझमें साहस मुझमें है छल।

तुम कहते हो कांग्रेस कभी
जेल से छूटकर आजाए।
सरकार उसे शासन सौंपे,
सारा गुड़-गोबर होजाए।

मैं फिर भी नहीं रुकूंगा,
मैंने राह सोचली है सीधी,
देखूं ऐसा है कौन मुझे,
जो वामपक्ष का बतलाए।
चाहे पहनूं मिल के कपड़े,
टोपी खद्दर की देता हूं।
मैं अवसरवादी नेता हूं!

जून, १९४२]

यह झगड़ा मुझे पसन्द नहीं

जो प्रातःकाल उठूं जल्दी
दीये जलते घर आजाऊं।
फिर ठीक तुम्हारी रुचि का भोजन,
नियत समय पर खाजाऊं।
मैं आज मिला किससे, कब, क्यों
यह तुम्हें शाम को बतलाऊं।
राजी से या नाराजी से
इकला न सिनेमा जा पाऊं।
मैं कभी तुम्हारी किसी सहेली
से भी हँसूँ, न बोल सकूं।
धोके से भी सन्दूक तुम्हारा
कभी नहीं मैं खोल सकूं।
तुम मेरी डाक स्वयं लेकर
पहले ही पढ़ने लग जाओ।
मिलने वाले मित्रों को भी
दरवाजे से ही टरकाओ।
मेरे पढ़ने के कमरे का
तुम करतीं ठीक प्रबन्ध नहीं।
यह झगड़ा मुझे पसन्द नहीं !

जी, मेरी दाढ़ी बढ़ी हुई है,
बढ़ने दो तुम काम करो।
जी, फटा कोट? फट जाने दो,
जाकर के तुम आराम करो।
टूटे जूते? सिल जाएँगे, श्रीमती,
आप चिन्ता न करें।
मैले कपड़े? धुल जाएँगे,
किस्सा भी आप तमाम करें।

मैं नहीं टहलने रात रहे
इतनी जल्दी जासकता हूं।
बस माफ करो अब च्यवनप्राश
मैं और नहीं खा सकता हूं।
दिन में कब अवसर मिलता है
जी, मुझे रात में पढ़ने दो।
तुम भी सोओ, जल्दी उठना,
मत व्यर्थ बात को बढ़ने दो।
हैं-हैं! ठहरो, क्या करती हो,
करना चिराग को मन्द नहीं।
यह झगड़ा मुझे पसन्द नहीं।

"शीला के घर पैकिट भेजा?"
जी, कल जरूर भिजवाऊंगा।
"इयरिंग के दाम पूछ आये?"
जी, कल जरूर पुछवाऊंगा।
"चाचाजी को चिट्ठी लिखदी?"
हाँ, लिख छोड़ी, कल डालूंगा।

मैके से चली पासल को भी
कल जरूर मँगवालूँगा।
क्या दरजी अभी नहीं आया?
मैं कल उसको बुलवाऊँगा।
चप्पल के भी दो-चार सैट
तुमको दिखलाने लाऊँगा।
क्या धोबी, वह भी भाग गया?
यह अभी सभी होने को था,
अच्छा बाबा, पीछा छोड़ो,
कल उसे खोजने जाऊँगा।
मैं सब कुछ करूँ मगर फिर भी
तुम बन्द करोगी द्वन्द नहीं।
यह झगड़ा मुझे पसन्द नहीं!

जुलाई, १९४३]

तुलसी मेरा उपकार करो

बस एक बार की डांट
काम कर गई तुम्हारे जीवन में।
तुम निकले घर से रामनाम की
रट लेकर अपने मन में।
लिख दिये सैंकड़ों ही पन्ने,
छप जाते प्रेस अगर होते,
रायल्टी से ही ऐश किया करते
बैठे बूढ़ेपन में।

हे कवि-कुल-गुरु! पथ-निर्देशक,
मैं घड़ी-घड़ी, प्रतिपल, प्रतिक्षण
चल कर तेरे ही चरणों पर
यह बाजी हारा जाता हूं।
मैं रोज-रोज अपनी 'उन' से,
रह-रह दुत्कारा जाता हूं।
मैं जितना ही गम खाता हूं,
उतना फटकारा जाता हूं।

अजी सुनो...!

मैं रोज रात को तय करता—
कल सुबह छोड़ दूंगा यह घर।
इस समय न मिल सकते तांगे,
इस समय न मिल सकता नौकर।
धोबी से कपड़े कब आये,
कब तार दिया है मित्रों पर!
गाड़ी का टाइम ज्ञात नहीं
यह मुश्किल है सबसे ऊपर।

सुनती हो कल मैं जाऊंगा,
जिस तरह गये थे कभी बुद्ध।
मैं वापस कभी न आऊंगा
लिनलिथगो-सा असहाय क्रुद्ध।
ए गोपा! सोती रहो, आज
यह नया तथागत जायेगा।
आँखें खोलो, दर्शन कर लो,
फिर पंछी हाथ न आयेगा।

तुम जो आजादी चाह रहीं
मैं कभी नहीं सह सकता हूं।
मैं तो इस घर में अब केवल
बेवल बन कर रह सकता हूं।
"अच्छा बेवल, अब देर हुई,
सोओ पड़ौस जग जायेगा।
कल लेट अगर आफिस पहुंचे
तो बुद्ध शुद्ध हो जायेगा।

वह और दूसरे होते हैं,
जिनके कि बात लग जाती है।
करने वालों में कहने की शेखी
कम देखी जाती है।"

तुलसी मेरा उपकार करो,
इस बर से अब उद्धार करो।
मेरे इस दुर्बल मानस को
हरि भजने पर लाचार करो।

अगस्त, १६४३]

जन्माष्टमी के दिन

प्यारे मुन्नू, अपनी मा से
कहना—बाबूजी आये हैं।
कुछ उनके होश उड़े-से हैं,
कुछ लगते वे घबराये हैं।
कुछ उनका दिल बैठा जाता,
कुछ उनको चक्कर आते हैं,
कुछ देख रहे वे इधर - उधर
ओठों पर जीभ फिराते हैं।

तुम चलो, बुलाया है जल्दी,
तबियत उनकी घबराती है।
वे कहते हैं कुछ बात, मगर
मुँह-की-मुँह में रह जाती है।
प्यारे भय्या, सब ऐसे ही
जाकर के हाल सुना देना।
तुम समझदार के लड़के हो
मन से भी चार बना देना।

"बस बहुत हुआ, सुन लिया सभी
मुझको बहकाने जाते हो।

कुछ आगे - पीछे का न होश,
बच्चे को झूंठ सिखाते हो।
मैं कहती हूं तुम एक रोज भी
भूख नहीं सह सकते हो ?
इस झूंठ बोलने की आदत से
बाज नहीं रह सकते हो ?
सब धर्म घोलकर पी डाला,
सब कर्म गृहस्थों के छोड़े।
इस घर के पथ में रोज-रोज
क्यों आप बिछाते हैं रोड़े ?"

क्या कहतीं—मैं कि विधर्मी हूं ?
देखो सम्हाल कर बात करो।
बच्चों को झूंठ सिखाता हूं,
यह कहकर मत उत्पात करो।
मैं सनातनी हूं, रोज नहाता,
घिसकर तिलक लगाता हूं।
वेदों की करता बात और
गीता के अर्थ बताता हूं।

तुम सुनना मेरा आज लेक्चर
लालाजी के मन्दिर में,
मैं कृष्णचन्द्र के जीवन को
क्या खोल-खोल समझाता हूं।
मैं सत्य - अहिंसा का पालक
बच्चों को झूंठ सिखाऊंगा !

तुम भी कैसी बातें करतीं,
मैं तुमको ही बहकाऊंगा।

पर मैं क्या करूं, बात यह है
तबियत मेरी घबराती है।
यह पाक-पँजीरी की खुशबू
आँतों में कुलल मचाती है।
यह धर्म-कर्म और नियम-व्यवस्था
सभी पेट की खातिर है।
यह ही खाली रह गया
कहो, संसार कहाँ फिर स्थिर है?

फिर आज दिवस है आनँद का
मैं मन को क्लेश नहीं दूंगा।
कुछ थोड़ा-सा ही ले आओ
मैं और विशेष नहीं लूंगा।
यह उन का ही है जन्म-दिवस
जो खाते और मचलते थे।
गोरस की चाट पड़ी ऐसी
चोरी के लिए निकलते थे।

भगवान् कृष्ण व्रत नहीं चाहते
दावे से कह सकता हूं।
फिर उनकी मर्जी के खिलाफ
भूखा कैसे रह सकता हूं?

अगस्त, '१९४३]

स्नान-धर्म

तुम कहती हो कि नहाऊं मैं !
क्या मैंने ऐसे पाप किये, जो इतना कष्ट उठाऊं मैं ?

क्या आत्म - शुद्धि के लिए ?
नहीं, मैं वैसे ही हूं स्वयं शुद्ध;
फिर क्यों इस राशन के युग में
पानी बेकार बहाऊं मैं ?

यह तुम्हें नहीं मालूम
डालडा भी मुश्किल से मिलता है;
मैं वैसे ही दुबला - पतला
फिर नाहक मैल छुड़ाऊं मैं ?

फिर देह-शुद्धि तो भली आदमिन,
कपड़ों से होजाती है !
ला कुरता नया निकाल
तुझे पहनाकर अभी दिखाऊं मैं ?

"मैं कहती हूं कि जनम तुमने
बामन के घर में पाया क्यों ?
वह पिता वैष्णव बनते हैं
उनका भी नाम लजाया क्यों ?"

अजी सुनो'''!

तो बामन बनने का मतलब है
सूली मुझे चढ़ा दोगी ?
पूजा - पत्री तो दूर रही
उलटी यह सख्त सजा दोगी !

(अरे) बामन तो जलती भट्ठी है,
तप-तेज-रूप, बस अग्निपुञ्ज !
क्या उसको नल के पानी से
ठंडा कर हाय बुझा दोगी ?

यह ज्वाला हव्य माँगती है—
घी, गुड़, शक्कर, सूजी, बदाम !
क्या आज नाश्ते में मुझको
तुम मोहनभोग खिला दोगी ?

"बस, मोहनभोग, मगद, पापड़
ही सदा जीभ पर आते हैं।
स्नान, भजन, पूजा, संध्या
सब चूल्हे में झुक जाते हैं।"

तो तुम कहती हो—मैं स्नान,
भजन, पूजन, सब किया करूं !
जो औरों को उपदेश करूं,
उसका खुद भी व्रत लिया करूं ?

प्रियतमे ! गलत सिद्धान्त,
एक कहते हैं, दूजे करते हैं !
तुम स्वयं देखलो युद्ध-भूमि में
सेनापति कब मरते हैं !

हिटलर बाकी, चर्चिल बाकी,
बाकी ट्रूमैन विचारा है।
तब तुम्हीं न्याय से कहो
कौन ऐसा अपराध हमारा है?

मैं औरों के कन्धों से ही
बन्दूक चलाया करता हूं।
यह धर्म, कर्म, व्रत, नियम
नहीं मैं घर लाया करता हूं।

फिर तुम तो मुझे जानती हो
मैं सदा भिकाया करता हूं।
कातिक से लेकर चैत तलक
मैं नहीं नहाया करता हूं।

जनवरी, १९४९]

कहना-सुनना बेकार गया

मैं कितनी बार कह चुका हूं-
जब कोई पास में बैठा हो,
तो अपनी वानर-सेना को
अपने वश में कर लिया करो।
खाना न सही, शर्बत न सही,
दो-चार बार के कहने पर,
मैं नहीं मँगाता पान, अरे,
पानी तो भिजवा दिया करो!

पर मलिन वेश, क्रोधित स्वर में,
तुम बड़-बड़ करती-सी अक्सर;
मेरे कमरे के आस-पास
आकर लहराया करती हो।
फिर आँख बचाकर आँखों में
मुझको धमकाया करती हो।
किस तरह लोग उठकर जायें
तुम यही मनाया करती हो।
इन छोटी-छोटी बातों को
समझाया बारम्बार गया!
कहना-सुनना बेकार गया!

घर से बाहर जाना हो तो
रह-रह कर ठाठ बदलती हो!
तुम अब भी अपने को आखिर
षोड़षी मानकर चलती हो?
हमको इसमें एतराज नहीं,
माना अब भी तुम सुन्दर हो।
जग चाहे जो कुछ कहे
मगर मुझको तुम सबसे ऊपर हो!
पर बाहर जाते समय सिर्फ
क्यों रूप निखारा जाता है?
साड़ी - जम्पर का मेल तभी
क्यों सिर्फ विचारा जाता है?
(अरे) हम भी सौन्दर्य - पारखी हैं,
टुक ध्यान इधर भी दिया करो!
कुछ और नहीं तो ठीक तरह
पल्ला सिर पर ले लिया करो।
खुद तुमको तो इन बातों का
बाकी रह नहीं विचार गया!
कहना-सुनना बेकार गया!

अपनी शादी को हुए, कम नहीं
बारह वर्ष व्यतीत हुए।
मैं तब से, सिर्फ तुम्हारा हूं,
विश्वास बात का किया करो।
कुछ इधर - उधर की बातों पर
जो अक्सर झूंठी होती हैं,

दुश्मन जिनको फैलाते हैं,
मत ध्यान जरा भी दिया करो।

मैं पत्नीव्रत का पालक हूं,
मैं गीता का अभ्यासी हूं,
मैं स्वस्थ चित्त का व्यक्ति, मुझे
साधारण कर मत लिया करो।
मैं सिर्फ तुम्हारे, शेष जगत के
नारिवर्ग को क्या जानूं ?
बस मुझको साधू समझ सदा
अपने गुस्से को पिया करो।
पर तुम तो गलत समझती हो,
समझा-समझाकर हार गया।
कहना-सुनना बेकार गया !

सितम्बर, १६५२]

आया ताजा अखबार प्रिये

आया ताजा अखबार प्रिये !
लो पढ़ो, हरेक मोर्चे पर अब जीत रही सरकार प्रिये !

हर रोज हमारे वायुयान
टन-के-टन बम बरसाते हैं !
हर रोज हजारों ही दुश्मन
मारे या पकड़े जाते हैं !
हर रोज युद्ध के बाद, विश्व
की ठीक व्यवस्था क्या होगी,
सुलझाने को यह प्रश्न
नये प्रस्ताव सामने आते हैं !

अब सोच-समझकर मित्र लोग
आगे को कदम बढ़ाते हैं।
अब सोच-समझकर के ही सब
वक्तव्य प्रेस में जाते हैं।
कुछ सोच-समझकर के ही तो
मिस्टर चर्चिल अब बार-बार,
बस बात-बात में अमरीका
जाने का कष्ट उठाते हैं !

तुम भी तो कुछ सोचो-समझो,
जब सोच रहा संसार प्रिये !
आया ताजा अखबार प्रिये !

"ये झोला लो जाओ बजार
सब्जी ताजी लेते आना।
आलू छै आने सेर, कहीं
ज्यादा पैसे मत दे आना।
मैं अभी बताये देती हूं
नौ बजे कहीं फिर देर न हो,
तुम इधर-उधर की बातों में
बैठे न कहीं पर रह जाना।"

ऐ, शाक बना लेना पीछे
अखबार पढ़ो पहले रानी !
लो देखो, मरने वाली है
हिटलर-मुसोलिनी की नानी !
अब बरमा छिनने वाला है
यह सोच-सोच करके ही बस,
तोजो के दिल में धड़कन है,
आँखों में भर आता पानी।
मैं कहता हूं इस ब्रिटिश शक्ति
का किसने पाया पार प्रिये !
आया ताजा अखबार प्रिये !

"अखबार तुम्हारे झूठे हैं,
तुम झूठों के सरताज खरे।

कल ही तो सब चिल्लाते थे—
हम हाय मरे, हम हाय घिरे,
जो वापस कदम हटाने को भी
विजय बताते आये हैं,
ऐसे लोगों की बातों का
विश्वास बताओ कौन करे ?"

ओ भागवान् ! ला झोला दे,
चुप रह जो कोई सुन लेगा।
तेरा तो क्या होना - जाना,
मुझको डिफेन्स में ले लेगा।
तू युद्ध - नीति को क्या जाने,
कैसी से हाय पड़ा पाला !
ला छै आने के सेर मुझे
आलू वह कुंजड़ा क्या देगा !
तुझसे तो इन सब बातों का
कहना - सुनना बेकार प्रिये !
आया ताजा अखबार प्रिये !

नवंबर, १९४२]

दिल्ली का तोहफा

चार चीजरत तुहफये दिल्ली—
खाँसी, जुकाम, बुखार, ताप-तिल्ली।

इन चारों को हम दोनों ने
आधा मिल-मिलकर बाँट लिया।
खाँसी-जुकाम खुद लेकर के
तिल्ली-बुखार दे उन्हें दिया।
मैं टीं - टीं करता रहता हूं,
वे हाय - हूय चिल्लाती हैं।
मैं अपना गला खखार रहा,
वे अपना पेट दबाती हैं।

मैं कहता हूं—दिल्ली छोड़ो,
वे कहती हैं—"ये ठीक नहीं।
दिल्ली में धन्धा अच्छा है,
कुछ रोज बसो तुम अभी यहीं।"
मैं समझाता उनको—रानी,
तन्दुरुस्ती बड़ी नियामत है।
वे झल्लातीं—"आरही अभी
ऐसी बड़ी क्या कयामत है ?"

मैं कहता हूं—मुझ पर न सही,
तुम पर तो आफत भारी है।
वे कहती हैं—"चाटो न मगज,
मुझको चढ़ रही तिजारी है।"

लो चढ़ी तिजारी—"हैं-हैं-हूं-हूं!
ठंड लगी बिस्तर लाओ।
दो डाल रजाई ऊपर से
मोटा - सा कम्बल ले आओ।
ये खिड़की कर दो बन्द,
हवा इसमें से ठंडी आती है।
सर में होता है दर्द और
तबियत बेहद घबराती है।"

मैं कहता था खाओ कुनैन,
पर तुम मेरी कब सुनती हो?
उलटी-ही-उलटी चलती हो,
अपनी-ही-अपनी धुनती हो।
मैं कहता था—निरहार रहो,
तुम आँख बचाकर खाती थीं।
मैं कहता था—मच्छर मारो,
तुम हिंसा - हिंसा गाती थीं।

अब उछल-उछलकर खटिया में
तुम शय्या - नृत्य करो रानी!
मैं नहीं पास में बैठूंगा,
मैं नहीं पिलाऊंगा पानी।

"कड़वी कुनैन थू-थू-थू-थू!
मैं कभी नहीं खा सकती हूं।
प्यारी दिल्ली को छोड़ नहीं
हरगिज बाहर जा सकती हूं।
तुम नहीं पास में बैठोगे,
तुम नहीं पिलाओगे पानी?
अच्छा तो देखो जाएगो,
ऐसी भी क्या है हैरानी!
अब मैं देखूंगी कौन सुबह का
खाना जल्द बनायेगा?
अब मैं देखूंगी कौन तुम्हें
धो-धो कपड़े पहनायेगा?
अब मैं देखूंगी कौन तुम्हारे
बच्चों को समझायेगा?
अब मैं देखूंगी कौन तुम्हारे
घर का खर्च चलायेगा?

जाओ तुमको होरही देर
मैं भी यह ठीक मानती हूं।
तुम जो कुछ करने जाते हो
मैं अच्छी तरह जानती हूं!
कल शकुन्तला की बड़ी बहन
मुझको बतलाने आई थी।
तुम उधर झाँकते आते हो
वह कड़ी शिकायत लाई थी।"

जब घर-पड़ौस की यह हालत,
तो बाहर क्या करते होगे ?
मैं जान गई हूं तुम आगे
तकलीफ मुझे भारी दोगे।"

रे दिल, अब तो खाँसो-खाँसो,
खाँसी में छुपी भलाई है।
ऐ पैर, चलो लपको बाहर
जूड़ी उनको चढ़ आई है।

दिसम्बर, १६४३]

पत्नी को परमेश्वर मानो

पत्नी को परमेश्वर मानो !

यदि ईश्वर में विश्वास न हो,
उससे कुछ फल की आस न हो,
तो अरे, नास्तिको ! घर बैठे,
साकार ब्रह्म को पहचानो !
पत्नी को परमेश्वर मानो !

वे अन्नपूर्णा, जग - जननी,
माया हैं—उनको अपनाओ।
वे शिवा, भवानी, चण्डी हैं,
कुछ भक्ति करो, कुछ भय खाओ।
सीखो पत्नी - पूजन - पद्धति,
पत्नी - अर्चन, पत्नीचर्या,
पत्नी - व्रत पालन करो और
पत्नीवत् - शास्त्र पढ़े जाओ।

अब कृष्णचन्द्र के दिन बीते,
राधा के दिन बढ़ती के हैं।
यह सदी बीसवीं है भाई,
नारी के ग्रह चढ़ती के हैं।

तुम उनका छाता, कोट, बेग
ले पीछे - पीछे चला करो,
सन्ध्या को उनकी शय्या पर
नियमित मच्छरदानी तानो!
पत्नी को परमेश्वर मानो!

तुम उनसे पहले उठा करो,
उठते ही चाय तयार करो।
उनके कमरे के कभी अचानक,
खोला नहीं किवाड़ करो!
उनकी पसन्द से काम करो,
उनकी रुचियों को पहचानो,
तुम उनके प्यारे कुत्ते को,
बस चूमो - चाटो प्यार करो!

तुम उनको नाविल पढ़ने दो,
आओ कुछ घर का काम करो।
वे अगर इधर आजायँ कहीं,
तो कहो—प्रिये, आराम करो।
उनकी भौंहें सिगनल समझो,
वे चढ़ी कहीं तो खैर नहीं,
तुम उन्हें नहीं डिस्टर्ब करो,
ऐ हटो, बजाने दो प्यानो!
पत्नी को परमेश्वर मानो!

तुम दफ्तर से आगये, बैठिए,
उनको क्लब में जाने दो।

वे अगर देर से आती हैं,
तो मत शंका को आने दो।
तुम समझो वह हैं फूल,
कहीं मुर्झा न जायँ घर में रहकर!
तुम उन्हें हवा खा आने दो,
तुम उन्हें रोशनी पाने दो!

तुम समझो "एटीकेट" सदा
उनके मित्रों से प्रेम करो।
वे कहाँ, किसलिए जाती हैं—
कुछ मत पूछो, ऐ 'शेम' करो!
यदि जग में सुख से जीना है,
कुछ रस की बूँदें पीना है,
तो ऐ विवाहितो, आँख मूँद,
मेरे कहने को सच जानो!
पत्नी को परमेश्वर मानो!

मित्रों से जब वह बात करें
बेहतर है तब मत सुना करो!
तुम दूर अकेले खड़े - खड़े
बिजली के खम्बे गिना करो!
तुम उनकी किसी सहेली को
मत देखो, कभी न बात करो।
उनके पीछे उनके दराज से
कभी नहीं उत्पात करो।

तुम समझ उन्हें स्टीमगैस,
अपने डिब्बे को जोड़ चलो।

जो छोटे स्टेशन आयें, उन
सबको पीछे छोड़ चलो!
जो सँभल कदम तुम चले-चले
तो हिन्दू सद्गति पाओगे,
मरते ही हूरें घेरेंगी, तुम
चूको नहीं मुसलमानो!
पत्नी को परमेश्वर मानो!

तुम उनके फौजी शासन में
चुपके राशन ले लिया करो।
उनके चैकों पर सही-सही
अपने दसखत कर दिया करो।
तुम समझो उन्हें 'डिफैंस एक्ट'
कब पता नहीं क्या कर बैठें?
वे भारत की सरकार, नहीं
उनसे सत्याग्रह किया करो!

छै बजने के पहले से ही
उनका करफ्यू लग जाता है!
बस हुई जरा-सी चूक कि झट
ही 'आर्डिनैंस' बन जाता है!
वे 'अल्टीमेटम' दिये बिना ही
युद्ध शुरू कर देती हैं,
उनको अपनी हिटलर समझो,
चर्चिल-सा डिक्टेटर जानो!
पत्नी को परमेश्वर मानो!'

जून, १९४४]

सब गांधीजी की माया है

यदि जीहज़ूर के कमरे में
कुत्ता भी आकर छींक जाय,
तो मैं तो यही सुझाऊंगा—
यह कांग्रेस की छाया है!
सब गांधीजी की माया है!

यदि पढ़े-लिखे दो-चार व्यक्ति
बातें करते दिखलाई दें।
कुछ उनके देसी कपड़े हों,
देसी-से शब्द सुनाई दें।
फिर उनकी शकलें कैसी हों,
बातें भी चाहे जैसी हों,
पर मैं तो पकड़ बताऊंगा—
इनमें षड़यन्त्र समाया है!
सब गांधीजी की माया है!

कालिज में जितने भी लड़के
धोती-कुरते में आते हैं।
या वे व्यापारी जो हिन्दी का
"हिन्दुस्तान" मँगाते हैं।

या वे जो नित्य टहलने को
जाते हैं मिलकर पाँच - सात,
मैं सच कहता हूं इन सबने
मिलकर विद्रोह उठाया है !
सब गांधीजी की माया है !

हिन्दी के रीडिंग - रूम और
देसी अखबारों के दफ्तर।
कुछ वैद्य-डाक्टरों की दुकान,
कुछ बंगाली लोगों के घर।
ये बम बनने के अड्डे हैं,
इनमें षड़यन्त्र सुलगते हैं,
इन लोगों ने ही भारत में
कह - कह जापान बुलाया है !
सब गांधीजी की माया है !

यदि खादी के कपड़े पहने,
गांधी की टोपी दिये हुए।
दिखलाई युवक पड़े जाता,
अखबार हाथ में लिये हुए।
तो पीछे से उसको पकड़ो,
देखो, उस पर पिस्तौल न हो,
वह हिंसक है हत्यारा है,
बागी है, भागा आया है !
सब गांधीजी की माया है !

अजी सुनो'''!

गांधी, गांधी ! यह आंधी है !
क्यों तुमने इसको छोड़ दिया ?
क्यों जिन्ना साहब का हुजूर !
पंजाबी सपना तोड़ दिया ?
मैं 'जीहजूर' का सेवक हूं,
मालिक को याद दिलाता हूं,
यह 'भारत छोड़ो' कहते हैं,
इन पर जापानी साया है !
सब गांधीजी की माया है !

जुलाई, १६४४]

मैं महावीरजी जाऊंगी

मैं महावीरजी जाऊंगी !

ऐ भगवन् ! इन्हें सुबुद्धी दो, मन-भर परसाद चढ़ाऊंगी।

मैं कितनी बार कह चुकी हूं—
लेखन कोई व्यवसाय नहीं।
ये भूखे मरने का धन्धा
इसमें होती है आय नहीं।
पर तुम मेरी किस्मत को ले
इसमें ही चिपटे बैठे हो,
इस युद्धकाल में भी तुमको
मिल रही नौकरी हाय नहीं।

पुचकार थकी, फटकार थकी,
मैं कहूं अकल कब आयेगी ?
या मेरी सारी उम्र युंही,
रोते - चिल्लाते जायेगी ?
कल बहन सुभद्रा कहती थीं—
जादू - टौना भी अजमाओ,
तुम अगर नहीं मानोगे तो
गंडा करवाकर लाऊंगी।
मैं महावीरजी जाऊंगी !

धोबी को देखो—मुश्किल से
छै पैसे कपड़े लेता है!
नाई को देखो—दो आने में
'शेव' बना कर देता है!
मोची को देखो—सुनती हूं
दस - बारह रोज कमाता है!
बढ़ई का और लुहारी का
रुजगार जोर से चेता है!

पर तुम हो खबर सुनाते हो
कागज पर भी कन्ट्रोल हुआ।
अखबारी पन्ने घट निकले
सब लिखना-पढ़ना गोल हुआ।
तुम लिये 'तीस परसैंट' पेट को
एक – तिहाई कर डालो,
चांदी की चीजें बचीं, इन्हें
कल मैके में पहुंचाऊंगी।
मैं महावीरजी जाऊंगी!

है अभी लड़ाई बहुत दिनों
मेरी मानो, कुछ नाम करो।
मैं रुपये तुम्हें मँगा दूंगी
ठेकेदारी का काम करो।
फिर देखो, एक साल ही में
ऊंची बिल्डिंग बन जाएगी।
तुम दफ्तर वाले लोगों से तो
पैदा हुआ – सलाम करो।

कुछ और नहीं तो राशन के
दफ्तर में भर्ती हो जाओ।
शर्मा साहब लगवा देंगे
तुम उनको अर्जी दे आओ।
फिर बने दरोगा फिरो,
दुकानों से भी चौथ वसूल करो
मैं चावल - शक्कर का घर में
चुपके रुजगार चलाऊंगी।
मैं महावीरजी जाऊंगी !

यदि मैं होती जो पुरुष,
पुलिस में झटपट नाम लिखा लेती
चौराहे पर ड्यूटी देती,
तांगों पर टैक्स लगा देती।
फिर अगर कहीं तुम होते मेरी
घरवाली, कामिनि सुन्दर,
तो सच मानो सोने की तगड़ी
जरूर ही पहना देती।
मैं कहती हूं तुम सिविल क्लर्क
बनने में क्यों घबराते हो ?
क्यों नहीं पिच्हत्तर रुपे माह में
बँधे - बँधाये लाते हो ?
मैं इन्हीं पिच्हत्तर में से तुमको
गरम सूट सिलवा दूंगी,
और अपने लिए खरीद नई
साड़ी बनारसी लाऊंगी।
मैं महवीरजी जाऊंगी !

मैं कहते - कहते हार गई—
तुम समय देखकर चला करो।
दुनिया मरती है, मरने दो,
तुम पहले अपना भला करो।
इस लिखने में भी बरकत है,
पर तुम उसको पहचानो तो!
लो, अपनी कलम-कटारी से
काटो जापानी गला करो।

फिर देखो तुमको गवर्मिन्ट
पलकों पर अधर उठाती है।
फिर देखो कम्यूनिस्ट - टोली,
छाती से तुम्हें लगाती है।
फिर देखो सारे आलोचक भी
प्रगतिशील बतलायेंगे।
फिर देखो मैं भी 'कामरेड' कह
तुमसे हाथ मिलाऊंगी।
मैं महावीरजी जाऊंगी!

पर हाय! तुम्हें क्या समझाऊं,
कब समझाने में आते हो?
मेरी सीधी - सची बातों पर
उलटे गीत बनाते हो!
तो यही सही, यह भी धन्धा
अच्छा है, इतना और करो;
लिख - लिखकर अपने लेख
क्यों नहीं मेरे नाम छपाते हो?

मैं महावीरजी जाऊंगी

मैं सच कहती हूं इस प्रकार
तुम अपनी वकत बढ़ा लोगे !
मिलने वालों की नजरों में
तुम खुद को खूब चढ़ालोगे।
निश्चय परिचय का क्षेत्र
तुम्हारा कई गुना बढ़ जायगा,
मैं स्वयं किसी सम्पादक से
कह करके जगह दिलाऊंगी !
मैं महावीरजी जाऊंगी !

अगस्त, १९४४]

दिवाली के दिन

"तुम खील-बताशे ले आओ,
हटरी, गुजरी, दीवट, दीपक।
लक्ष्मी - गणेश लेते आना,
झल्लीवाले के सर पर रख।

कुछ चटर-मटर, फुलझड़ी, पटाके,
लल्लू को मँगवाने हैं।
तुम उनको नहीं भूल जाना,
जो खाँड़-खिलौने आने हैं।

फिर आज मिठाई आयेगी,
शीला के घर पहुंचानी है।
नल चले जायंगे जल्द उठो,
मुझको तो भरना पानी है।"

"है झूंठ चलेंगे नल दिन-भर
क्या मालुम नहीं दिवाली है?
इस गवर्मिन्ट के शासन में
पानी की क्या कंगाली है!

पर खील मँगाती हो सुनकर
दिल खील-खील होजाता है।

यह तुम्हें नहीं मालूम,
खील-चाँवल का कैसा नाता है ?

चाँवल की खीलें बनती हैं,
वह चाँवल 'चोरबजार' गया ।
सो मिलता है बे-मोल, सोचकर
खील मँगाओ मत कृपया ।

वे खाँड - खिलौने बने नहीं,
शक्कर पर प्रिय, कन्ट्रोल हुआ ।
होगई मिठाई तेज कि खोआ
भी बजार से गोल हुआ ।

फिर रहम करो, मत चटर-मटर
फुलझड़ी पटाके मँगवाओ ।
इनमें विस्फोटक चीजें हैं
सुन लेगा कोई भय खाओ ।

हुं: मिट्टी के लक्ष्मी-गणेश का
पूजन भी क्या करती हो ?
मैं लम्बोदर, गजदन्त, चरण
मेरे क्यों नहीं पकड़ती हो ?

औ' मैं तो सदा-सदा से तुमको
लक्ष्मी कहता आया हूं ।
ऐ गृहलक्ष्मी, घर की शोभा,
मैं इन चरणों की छाया हूं !

अजी सुनो'''!

जिस दिन से घर में आई हो
उस दिन से सदा दिवाली है।
मैं अन्दर से धनवान, सिर्फ
बाहर से ही कंगाली है।

सो इसकी चिन्ता नहीं, आज
मैं खुद ही शेव बना लूंगा।
है अभी चमक जिसमें बाकी
वह काला कोट निकालूंगा।

शीला को लेना साथ रोशनी
तुमको आज दिखायेंगे।
घण्टेघर के चौराहे पर
बस चाट - पकौड़ी खायेंगे।

लल्लू को लेंगे गुब्बारा
वह हँसता - हँसता आयेगा।
इस भांति दिवाली का मेला,
सस्ते ही में हो जायेगा।

अक्तूबर, १९४४]

एजी कहूं कि ओजी कहूं ?

'एजी' कहूं कि 'ओजी' कहूं ?
'सुनोजी' कहूं कि 'क्योंजी' कहूं ?
'अरे ओ' कहूं कि 'भाई' कहूं ?
कि सिर्फ 'भई' ही काफी है ?
अब तुम्हीं कहो, क्या कहूं ?
तुम्हारे घर में कैसे रहूं ?

'सरो' कहूं या 'सरोजनी'
पर नाम न लेने तुम देतीं !
तो 'जग्गो की जीजी' कहदूं ?
ऐ 'शीला की संगनि' बोलो,
तुम 'मुरली की महतारी' हो,
तुम 'हरकिसुना की प्यारी' हो,
तुम 'चन्द्रकला की चाची' हो,
तुम 'भानामल की भूआ' हो,
तुम हो 'गुपाल की बहू',
············कहो क्या कहूं ?
तुम्हारे घर में कैसे रहूं ?

कुछ नये नाम ईजाद करूं,
प्राचीन प्रथा बर्बाद करूं,
या रूप, शील, गुण, कर्मों से ही
तुम्हें पुकारूं याद करूं ?
कि 'बुलबुल' कहूं कि 'मैना' कहूं !
कि मेरी 'सौनचिरय्या' बोलो तो ?
ये रसमय अपनी चौंच
'कोइलिया' खोलो तो ?

तुम संकल-चम्मच बजा-बजाकर
अपना काम चला लेतीं।
तो मुझको भी क्यों नहीं
कनस्तर टूटा-सा मँगवा देतीं ?

या खुद ही किसी रोज
देवी के मेले में मैं जाऊंगा।
औ' छोटी-सी डुमडुमी एक
अच्छी खरीद कर लाऊंगा।
फिर संबोधन की सकल समस्या
पल में हल हो जायेगी।
जब कभी बुलाना होगा तो
डुम-डुम डुमडुमी बजाऊंगा।
तुम रूंठ गईं, ये ठीक नहीं,
तो कहो अटकनी कहूं ?
मटकनी कहूं, चटखनी कहूं ?
अब तुम्हीं कहो क्या कहूं ?
तुम्हारे घर में कैसे रहूं ?

मैं 'हनी' कहूं या 'डियर' कहूं ?
या 'डार्ले' पुकारूं अंग्रेजी ?
या स्वयं देवता बन जाऊं,
औ' तुम्हें पुकारूं देवीजी ?

ये देवी नहीं पसन्द कि
'मैंने कहा' इसे भी रहने दो।
तुम 'मेरी कसम' मान जाओ,
बस 'कामरेड' ही कहने दो।

ऐ कामरेड, घर गवर्मिन्ट,
मेरी स्टालिन बोलो तो ?
मैं चर्चिल कब का खड़ा, अरी,
फौलादी मुखड़ा खोलो तो ?

कि 'बिजली' कहूं कि 'इंजिन' कहूं ?
कि मेरी 'बख्तरबन्द टैंकगाड़ी' ?
अब तुम्हीं कहो क्या कहूं ?
तुम्हारे घर में कैसे रहूं ?

[नवंबर, १९४४]

पत्र का उत्तर

पूछा है एक श्रीमती ने
चिट्ठी लिखकर सम्पादक को—
"कवि यह जो गीत लिखा करता,
वह कौन, कहाँ पर रहता है?
रंग कैसा है? कद, कैसा है?
आदत, व्यवहार, चलन कैसा?
इसकी शादी होगई या कि
अविवाहित है, आवारा है?"

कर कृपा मुझे सम्पादकजी ने
चिट्ठी वह दिखलादी है।
या कहूं कि मेरे जीवन में
एक नई रोशनी ला दी है।

मैं अस्त-व्यस्तपन छोड़,
धुले कपड़ों की आदत डाल रहा।
बस उस दिन से ही तेल डाल,
मैं टेढ़ी माँग निकाल रहा!

कुछ ऐसा मुझको हुआ कि
अब तो रोज नहाया करता हूं।

हनुमान विनय सुनलें मेरी
'चालीसा' गाया करता हूं!

सुनता हूं सुबह टहलने से
चेहरे पर रौनक आती है।
सुनता हूं सांस रोकने से
छाती चौड़ी होजाती है!

मैं सांस रोकता, दौड़ा करता,
गाजर खाया करता हूं।
मैं भर-भर हवा, देख शीशे में
गाल फुलाया करता हूं!

अब अपने पूर्व परिचितों से
कम मिलता हूं, कतराता हूं।
मैं लम्बे-लम्बे डग भरता
टेढ़ा-ही-टेढ़ा जाता हूं।

ये राह निकलते नर-नारी
जो मुझको ताका करते हैं।
मैं अनुभव करता हूं मेरे
पौरुष को आंका करते हैं।

ये सोचा करते हैं शायद—
"देखो क्या गबरू जाता है!
है चाल मस्त गैंड़े जैसी
बारहसिंगा शरमाता है!"

मैं नजरों से हैरान, निगाहें
मुझको देख हँसा करतीं।
ये गली-मुहल्ले की परिचित
भाभियाँ अवाज कसा करतीं।

कहती हैं—"लाला, आज कहाँ,
तुम लपके - लपके जाते हो ?
यह नया कोट, चप्पलें नयी,
कुछ बदले - से दिखलाते हो !

हाँ, सचमुच ही मैं बदल गया हूं,
इस चिट्ठी के आने से।
ज्यों मरा सांप जी उठता है,
पूरबी हवा लग जाने से।

मैं चिट्ठी की लिपि पर से ही
अनुमान लगाया करता हूँ।
तुम सुन्दर हो, सुमनांगी हो,
विदुषी ठहराया करता हूँ।

तुम यू० पी० की रहने वाली,
लाहौर बस गईं जाकर हो।
ऐ सुमुखि ! मुझे मालूम होता,
तुम सचमुच पास 'प्रभाकर' हो।

मैं खत से पूछा करता हूँ—
वे और लिखा करती हैं क्या ?

ऐ स्याही ! बता कलमवाली
हर रोज किया करती हैं क्या ?

क्या सचमुच उनको कविता से
है प्रेम ? सिनेमा जाती हैं ?
क्या सचमुच ही स्टेशन से
'माया' हर माह मँगाती हैं ?

क्या सचमुच ही वे ओठ
रँगा करती हैं ? भौंह बनाती हैं ?
क्या सचमुच ही जब हँसती हैं
आँखें छोटी होजाती हैं ?

ऐ नरम लिफाफे, बतला दे,
वे नरम-नरम दिल वाली हैं ?
या उनका रूखा है स्वभाव
टेढ़ी हैं, हंटरवाली हैं ?

ओ हंटरवाली ! अरे, अरे !
मैं कौन, कहाँ ? क्या सोच रहा ?
यह कौन खड़ा पीछे कुर्सी के
धीमे - धीमे नोच रहा ?

आँ...तुम हो "जग्गो की जीजी"
हां, आओ, ऐंजी ? 'ये क्या है ?'
ये चिट्ठी ? अरे नहीं छोड़ो,
यह तो दफ्तर का पुर्जा है !

हाँ, पुर्जा है, लिक्खा है—जल्दी
आओ, काम जरूरी है।
मैं जाता हूं, क्या करूं,
नौकरी है, बेहद मजबूरी है!

"ये दफ्तर के पुर्जे कब से
इस घर में आते - जाते हैं?
मैं देख रही हूं रंग - ढंग
कुछ बदले - से दिखलाते हैं!

लाओ, देखूं आखिर क्या है?"
ऐ नहीं, तुम नहीं समझोगी।
लाओ सम्हालकर रख छोड़ूं
वरना तुम कहीं फेंक दोगी।

"जी नहीं, इसे मैं भी सम्हालकर
रक्खूंगी, घबराओ मत।"
लो तुम भी क्या सर पड़ीं
सिर्फ पुर्जा है, शंका खाओ मत।

"मैं पुर्जे को, पुर्जेवाली को
कच्चा ही खा जाऊंगी।
मैं नहीं उठाई आई हूं,
ब्याही हूं मजा चखाऊंगी।

ये कौन कलमुही डाइन है
जो यों तुमको भरमाती है?

भगवान् घोर कलियुग आया
धरती न हाय फट जाती है !

ओ मय्या री, ओ बाबा रे,
अच्छे घर में तुमने ब्याही।
मैं इधर गिरूं तो कूआ है,
औ' इधर गिरूं तो है खाई !"

+ +

ओ खतवाली, अब तुम्हीं कहो,
ये चिट्ठी इन्हें दिखादूं क्या ?
या जो कुछ अब तक सोचा है,
वह फिर से इन्हें सुनादूं क्या ?

[...रवरी, १६४६]

कोऊ कोटिक संग्रहौ, कोऊ लाख पचीस।
राम हमारी तो बनी, रहै चार-सौ-बीस ॥

जाको राखै साइयां, मारि सकै ना कोय।
ज्यौं-ज्यौं चर्चिल कोसिए, त्यौं-त्यौं मोटो होय ॥

जिन्ना-पाकिस्तान को ऐसैं मिलगौ मेल।
दियौ छँछूदर ने मनौ, सीस चमेली तेल ॥

राम झरोखा बैठिकैं, सबको मुजरा लेंइ।
सिकल देखिकैं ऊजरी, ऊनी कपरा देंइ ॥

जप-तप-तीरथ मत करो, बरतौ स्वेच्छाचार ।।
नरकहु में अब खुलिगये, नामी चोर-बजार ॥

कृष्ण चले ब्रजभूमि कौं, राधा पकरी बांह।
कोइला य्हां ते लै चलो, वहाँ मिलैंगे नायं ॥

काल मरै सो आज मर, आज मरै सो अब्ब।
ईंधन पै रासन भयो, फेरि मरैगो कब्ब?

आवत ही हरखै नहीं, नयनन नहीं सनेह।
हम बोतल लैकें खड़े, तेल न बनिया देइ ॥

तुलसी या संसार में कर लीजै दो काम।
भरती हूजै फौज में, वारफन्ड में दाम ॥

कबिरा नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
जी०एच०क्यू० की नौकरी, ज्यादा टिकनी नायँ॥

ठेकेदारी में बढ़े चाम, दाम और नाम।
दोऊ हाथ उलीचिए, यही सयानो काम॥

रायबहादुर ना भये, देख्यो पेपर छान।
कबहुक दीनदयाल के भनक परैगी कान॥

पड़े रहैं दरबार में, धका धनी के खायं।
अबकैं 'सर' है जाइँगे, पैर रहैंगे नायं॥

ससुर खड़े, पत्नी खड़ीं, काके लागूं पायं।
बलिहारी इन ससुर की पत्नी दई बिवाहि॥

तनखा थोरी मिलत है, पत्रकार चिल्लाहिं।
रहिमन करुए मुखन कौं, चहियत यही सजाहि॥

अरजी दै दै जग मुआ, नौकर हुआ न कोय।
पढ़ै खुशामद को सबक, नौकर मालिक होय॥

रूठी लीग मनै नहीं, लाख मनावौ कोय।
रहिमन बिगरे दूध के मथे न माखन होय॥

रहिमन जिन्ना मियाँ ते, तजौ बैर औ प्रीत।
चाटे-काटे स्वान के, दुहूं भांति बिपरीत॥

रहिमन लाख भली करौ, जिन्ना जिद्द न जाय।
राग सुनत, पय पियतहू, सांप सहजि घर खाय॥

रहिमन जिन्ना चाक ते, मांगौ दिया न देइ।
छेदहि डंडा डारि कैं चहै नाँद ले लेइ॥

जिन्ना में ना लगि रही, जिन्नू भई है जिद्द।
'जिन' को मतलब भूत है, तीनो बात निषिद्ध ॥

आप न काहू काम के डार, पात, फल, मूर।
औरन को रोकत फिरै, जिन्ना वृक्ष बँबूर ॥

जब लगि ही जीबो भलो, फलै चार-सौ-बीस।
बिना चार-सौ-बीस के, जीवन तेरह-तीस ॥

वारफण्ड के कारनै, सब धन डारो खोइ।
मूरख जानै खो गयौ, लाख-चौगुनौ होइ ॥

एक घड़ी, आधी घड़ी, आधिहु में पुनि आध।
संगत साहूकार की हरै कोटि अपराध ॥

अर्थ, न धर्म, न काम-रुचि, पद न चहौं निर्वान।
केवल रायबहादुरी, दीजैं दयानिधान ॥

ज्वार-मका की रोटियाँ, घासलेट कौ घी।
रूखी-सूखी खाइकैं, ठंडा पानी पी ॥

कौन करै अब नौकरी, कौन करै व्यापार।
राम सलामत जो रखै, जुग-जुग चोरबजार ॥

साँकर घर की लग गई, रात भई जो देर।
रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देख दिनन के फेर ॥

[सियावर रामचन्द्र की जय।]

दिसम्बर, १६४४]

आदत से मजबूर

सूर सूर, तुलसी ससी, उडगन केशव दास,
पन्त-निराला बल्व हैं, लालटेन हैं व्यास।

लालटेन है व्यास कि जिसमें तेल नहीं है,
बत्ती बिगड़ी हुई जलाना खेल नहीं है,
चिमनी फूटी हुई कि जिसका मेल नहीं है,
माडल उन्तालीस कि जिसकी सेल नहीं है।

शब्द अर्थ और व्यंग से यद्यपि कोसों दूर हूं।
लेकिन इसको क्या करूं आदत से मजबूर हूं।

आदत से मजबूर जिस तरह मिस्टर जिन्ना,
बैठे शिमला शिखर बजाते ता-धा-धिन्ना,
सबकी सीधी चाल, मगर वे ऐंचक-तिन्ना,
सबकी सीधी बात, मगर वे छिन्ना-भिन्ना,

यद्यपि पाकिस्तान से वे भी कोसों दूर हैं।
लेकिन इसको क्या करें, आदत से मजबूर हैं।

जुलाई, १६४५]

चला जा !

गरीबों के घर का तो मालिक खुदा है,
तू अपना ही रुतवा बढ़ाता चला जा।
बगावत से रह दूर जा रेडियो पर,
तू जङ्गी तराने सुनाता चला जा।

गरीबों से क्या पायेगा तू तरक्की,
अमीरों से दिल को मिलाता चला जा।
तू बच्चों से उनके मुहब्बत किये जा,
हरम की हुकूमत उठाता चला जा।

ये उर्दू न हिन्दी कभी बन सकेगी,
तू अपनी कमाई कमाता चला जा।

निराशा से जी छोड़ बैठे हैं अक्सर,
उन्हें राह अपनी दिखाता चला जा।
ये मुमकिन नहीं तू हटे हार जाये,
खुशामद के बस गुल खिलाता चला जा।

अगर तुझको साहब कभी गालियाँ दें,
उन्हें झेलता मुस्कुराता चला जा।
अगर काम बनता है सर को झुकाये,
तो सौ बार सर को झुकाता चला जा।

चला जा

अगर हेड बनना है दफ्तर में तुझको,
शिकायत किये जा, सुझाता चला जा।
जहाँ भी अँधेरा नजर आये तुझको
तू मौके के दीये जलाता चला जा।

तू लीडर बनेगा कहा मान मेरा,
बयानों को शाया कराता चला जा।
गुलामी से मत डर, मिनिस्टर बनेगा
कि बस हाँ-में-हाँ तू मिलाता चला जा।

न डर देशभक्तों से बकते हैं ये तो,
कदम अपना आगे बढ़ाता चला जा।
ये अखबार वाले अगर तुझको छेड़ें,
तो पर्वाह न कर लड़खड़ाता चला जा।

सितम्बर, १६४६]

मुझे जुकाम हुआ है

संगिनि, मुझे जुकाम हुआ है !

कहता था कि रायता मुझको
रुचता नहीं ठंड करता है;
पर तुम मानी नहीं, दही में
पानी घोल पिला ही डाला;

अब लो, यह छीं ! आं···छीं-आं···छीं,
सब कुछ हाय हराम हुआ है !
संगिनि, मुझे जुकाम हुआ है !

सर में मेरे धम-धम बम के
गोले मानो बरस रहे हैं।
हाथ-पैर में हड़कन
मानो टैंक कुदकते हैं नस-पर।
आज नाक में ब्रिटिश फौज का
सचमुच सदर मुकाम हुआ है !
संगिनि, मुझे जुकाम हुआ है !

नाक का मतलब तोप, तोप का
मतलब छींकें गरज रही हैं,
छींक का मतलब नहीं, नहीं का
मतलब युद्ध चलेगा लम्बा;
अरे, चाशनी शीघ्र बनादो
अभी नहीं आराम हुआ है!
संगिनि, मुझे जुकाम हुआ है!

[अक्तूबर, १६४३]

इतना ही क्या मुझको कम है ?

इतना ही क्या मुझको कम है !

एक पत्नी है, दो बच्चे हैं,
पुस्तक भर-कर अलमारी है।
दुनिया लेखक-लेखक कहती
करती सराहना प्यारी है।

क्या हुआ समालोचक मेरी
रचना की करते कद्र नहीं,
फिर भी मैं लिखता रहता हूं,
छपने का क्रम भी जारी है।

रचनाएं नहीं लौटती हैं
पारिश्रम का फिर क्या गम है !
इतना ही क्या मुझको कम है !

तुम कहते हो कि प्रकाशक
मेरा खून चूसने को तत्पर,
मैं कहता हूं यह गलत उन्हें
अफसोस हमारी किस्मत पर।

वे मुझे देख होते प्रसन्न,
मिलते ही पान खिलाते हैं।
वापस आता हूं दरवाजे तक
आकर खुद पहुँचाते हैं!

रायल्टी भले देर से दें
व्यवहार मगर सुन्दरतम है!
इतना ही क्या मुझको कम है!

लेखन कोई व्यवसाय नहीं,
जिसमें कि लाभ देखा जाये।
लेखक कोई मजदूर नहीं,
जो काम करे रोजी पाये।

(अरे) लेखन तो उग्र तपस्या है,
हिन्दी का लेखक वैरागी!
बिन मांगे ही देता जाये,
कुछ भी न कहे सहता जाये!

मैं भी अपना साहस बटोर
सहता जब तक मुझमें दम है!
इतना ही क्या मुझको कम है!

जनवरी, १९४२]

हिटलर मारा गया होगई हार

जर्मनवाला डाल गया हथियार,
हिटलर मारा गया होगई हार,
योरुप के संगीन मोर्चे पर जीती सरकार !

हॉकर के यूं चिल्लाते ही,
लाला का आसन डोल गया।
लल्ली कांपी, लल्ला रोया,
लालाइन का दिल डोल गया।

सोचने लगे—क्या सचमुच ही,
सोना पचास हो जायेगा ?
कपड़े की गांठें छिपा रखीं,
इनका विनास हो जायेगा !

अब तीन रुपे की चीज,
तीस में हाय नहीं बिक पायेगी ?
अब क्या बजार में शिवशंकर !
पहली - सी सुस्ती छायेगी ?

ऐ महादेव ! भोले बाबा !
औघड़दानी ! ऐसा वर दो।
सोने का सांप चढ़ाऊंगा,
हिटलर को फिर जिन्दा कर दो।

ऐ मजिस्ट्रेट महाराज, भले ही
वारफण्ड तुम ले जाओ।
सर्टीफिकेट के भी कागज
जो नहीं बिके हों दे जाओ।

पर माई-बाप कृपा करके
फौजों को हुक्म सुना डालो।
तुम मरे हुओं को ही मारो
जिन्दों के खून सुखा डालो।

सोने को रोके रहो
महल सोने का मुझे बनाने दो।
चांदी को कागज ही करदो
पर मुझ पर आँच न आने दो।

लो, मलमल का यह एक थान,
कल रेशम का भिजवाऊंगा।
बनिया का बेटा हूं हुजूर,
कह दूंगा उसे निबाहूंगा।

२

जर्मनवाला डाल गया हथियार,
हिटलर मारा गया होगई हार,
योरुप के संगीन मोर्चे पर जीती सरकार!

'हाकर' के यूं चिल्लाते ही
बाबू सोया था जाग गया।
दिन में ही तारे दीख गये,
आलस-खुमार सब भाग गया।

सोचने लगा—क्या सचमुच ही
क्वाटर मेरा छिन जायेगा ?
क्या सचमुच ही सप्लाई का
यह दफ्तर मारा जायेगा ?

क्या सचमुच ही अब बेकारी
फिर से मुँह फाड़े आयेगी ?
जैसे - तैसे जो शान्त हुई
वह बीवी फिर सिर खायेगी ?

हे बजरंगी ! हे रणरंगी !
हनुमान गये किस लंका में ?
जल्दी आकर के पुल बाँधो,
ये भक्त पड़ा है शंका में !

तुलसी के चिन्तन पर तुमने
लाखों बन्दर उपजाये थे।
सुनता हूं शाह अकब्बर के
छक्के तुमने छुड़वाये थे।

सो महावीर ! अंजनी-पूत !
वैसा ही कौतुक दिखलाओ।
पश्चिम के विकट मोर्चे पर
तुम कुमुक वानरी भिजवाओ !

कोई हारे, कोई जीते
इसकी विशेष परवाह नहीं।
वेतन में और तरक्की हो
इसकी भी है अब चाह नहीं।

पर रामदूत! ऐसा वर दो,
लैजर - फायल ये बनी रहें।
मैं रहूं, रहे नौकरी और
हाकिम की नजरें घनी रहें।

३

जर्मनवाला डाल गया हथियार,
हिटलर मारा गया होगई हार,
योरुप के संगीन मोर्चे पर जीती सरकार।

सम्पादक की पत्नी बोली,
"लो, झगड़ा मिटा लड़ाई का।
अब सांस खुले में हम लेंगे,
युग बीत गया महँगाई का।

मैं अब मानूँगी नहीं, जरूरी
चीजें कुछ बनवाऊंगी।
सोना पचास होते ही मैं
बाजार खरीदे जाऊंगी।

पर बात लड़ाई की सुनकर
एडीटर का मुँह सूख गया।
सोने की चर्चा चलते ही
बेचारे का दिल टूट गया।

धारी ने,
यूं सोचा व्योमविहारी ने,
यूं सोचा तबीयत खारी ने,
यूं सोचा..............ने।

क्या सचमुच ही महँगाई का
यह भत्ता मारा जायेगा ?
जो बोनस दुगना-तिगुना है,
वह हाय उतारा जायेगा !

जैसे - तैसे ये सौ - पचास
जो जमा हुए चुक जायेंगे।
फिर इन्द्रिय-दमन शुरू होगा
सत्याग्रह के दिन आयेंगे!?

ऐ रूटर की मशीन उगलो
तुम ही कुछ हाल लड़ाई के।
ऐ मोलोटोव तुम्हीं हो अब
सचमुच में केन्द्र बड़ाई के।

ऐ वेविल देखें दृष्टि तुम्हारी
कितनी पैनी जाती है।
ऐ चर्चिल देखें चाल तुम्हारी
अब क्या-क्या रंग लाती है ?

मई, १६४२]

तू राम भजन कर प्रानी !

तू राम भजन कर प्रानी !
क्या लट्ठा-मलमल पहनेगा, धोती बाँध जनानी !

पहन जनानी धोती बन्दे,
कुरता बना फाड़ कर नम्दे,
उनसे कहदो टाट लपेटें, माया आनी-जानी !
तू राम भजन कर प्रानी !

मैदा-सूजी मत खा भाई,
शक्कर, शर्बत त्याग मिठाई,
बना सौंठ का पानी, जिससे जाती रहे गिरानी !
तू राम भजन कर प्रानी !

मत मिट्टी का तेल जला रे,
आँखें फूट जायंगी प्यारे,
धीरे-धीरे स्वयं रात में सूझ उठेगा ज्ञानी !
तू राम भजन कर प्रानी !

चिन्ता मतकर तू अकाल की,
धमकी भी क्या तुझे काल की,
वचन शास्त्रों का प्रमाण कर दो दिन की जिंदगानी !
तू राम भजन कर प्रानी !

अगस्त, १९४९]

तुमने मुझको क्या समझा है ?

मैं कवि हूं नई जवानी का
लिक्खे हैं मैंने अमित गीत;
यद्यपि उनका छपना बाकी
पर शेष रहा उत्साह नहीं—
मैं कई बार हो आया हूं
हाकिम के दर, लाला के घर,
उन प्रकाशकों के भी सर पर
अक्सर मँडराया करता हूं—
जो मुफ्त छाप करके पुस्तक
एहसान दिखाया करते हैं !
तुमने मुझको क्या समझा है ?

यद्यपि मेरा स्वर भारी है—
उसमें पंचम के बोल नहीं;
लेकिन लहजा कुछ ऐसा है
जिसमें मिठास है, मोशन है
मानो सहगल गाते होवें—
पहने केवल धोती - कमीज !
तुमने मुझको क्या समझा है ?

कविताओं का बाजार यहाँ,
हर माल हुआ तय्यार यहाँ,
'शाश्वत सत्यों' की मुझ-जैसी
किसमें है उठी पुकार कहाँ ?

मैंने लिक्खे हैं प्रणय - गीत
युवकों का मन बहलाने को।
मैंने लिक्खे हैं राष्ट्र - गीत
जनता में ज्योति जगाने को।

मैंने लिक्खे एकान्त - गीत
मस्ती में कभी सुनाने को।
मैंने लिक्खे हैं अनल - गीत
भी प्रगतिशील बन जाने को !

मैंने लिक्खे हैं विदा - पत्र
रो - रोकर अश्रु बहाने को।
मैंने लिक्खे हैं स्वागत के
शुभ गीत शान दिखलाने को।

मेरी पैरोडियाँ खूब चलीं
छप चुकीं अनेकों पत्रों में,
मुण्डन, विवाह, यज्ञोपवीत के
तो फिर गीत अनेकों हैं।

तुमने मुझको क्या समझा है ?

२

है एक और मेरा पहलू
मैं अति विनम्र, मैं अति उदार,

है मेरी पैठ रईसों में,
है मुझको ऐसा स्नेह स्वयं
उन नन्हे, छोटे बच्चों से,
सुकुमार दुधमुँहे शिशुओं को
रोता न देख मैं पाता हूं;
माताओं से भी छीन उन्हें
हलराता हूं, दुलराता हूं,
गाता हूं गीत लोरियों के
पलनों पर उन्हें झुलाता हूं।

इस कारण बीबीजी प्रसन्न,
बच्चे मुझसे बेहद खुश हैं,
पापा से जाकर कहते हैं
बाबूजी हैं मुझसे प्रसन्न!
ट्यूशन मिलने का मूल मन्त्र,
सर्विस मिलने की प्रथम कड़ी,
आदर की, प्रेम - प्रतिष्ठा की
शुरूआत यहीं से होती है!
तुमने मुझको क्या समझा है?

अक्तूबर, १९४०]

ठंडी सड़क !

सुबह ताकत के लिए दौड़ते हैं
बड़े गोल-मटोल-से तोलने वाले !
दस से बस दौड़ते हैं वह शिष्य
जो नब्ज गुरू की टटोलने वाले !
बाद में दौड़ते देखे पियून, जो
बीच ही में खत खोलने वाले !
शाम को दौड़तीं कारें, चढ़े
रहते हैं बड़े रस घोलने वाले !

ललनाएं यहाँ चलती हैं लचक,
प्रमदाएं यहाँ चलती हैं मचक,
सिकुड़ी-सी, सड़ी-सी, कलूटी इसाइनें
भी चलतीं नजरों से बिचक !

इन्हें देख जो पाते कहीं कवि केशव
तो उनका मन जाता फड़क !
दिल जाता धड़क !
बड़ी ठंडी सड़क !
बड़ी ठंडी सड़क !

यहाँ कालिजों,
होस्टिलों की बड़ी फील्ड के
पार्श्व के कुञ्ज,
बरामदों के तले,
घूमते - बैठते
मोद - विनोद में
यों चर्चाएं चला करती हैं—

आओ बसन्त, सिनेमा चलें
बड़े ठाठ से नाच रही है अजूरा !
नृत्य का ज्ञान किये बिना मित्र
सोसायटी रहती सदा ही अधूरी !
लगा सिर्फ अगस्त अभी से तुम्हें
पढ़ना-लिखना क्यों हुआ है जरूरी ?
अरे, ऐश करो, पढ़ने के लिए तो
पड़ी हुई है अभी जिन्दगी पूरी !

अकाल नहीं जिन्हें व्यापता है,
दुष्काल खड़ा - खड़ा काँपता है,
रौब है एक ही डांट में मैस का
नौकर भूमि को नाँपता है।
इनमें है छिपी बिजली की कड़क !
विस्फोट हैं ये, बम की या भड़क !
बड़ी ठण्डी सड़क !
बड़ी ठण्डी सड़क !

मिल के मजदूर कहीं मिल के
डिस्पर्स जलूस से झूमने आते!
झुण्ड-के-झुण्ड कुमारियों के
हुई शाम यहाँ पै झलूमने आते!
घर में घरनी के सताये हुए
घबराये हुए कुछ घूमने आते!
प्रेयसी छोड़ गईं पद-चिन्ह,
सुचप्पलों के उन्हें चूमने आते!

यह कौन चले जारहे हैं अचक,
इन्हें देख के होता यही मुझे शक,
कि जो वस्त्र ये मर्द से दीखते हैं
वे प्रसूति-से शीघ्र उठी, किसी नायिका
के तन पर पहनाये गये
सचमुच, बिलाशक!

अजी शाह हैं, ताजा विवाह हुआ।
इन्हें टोकिये न चले जारहे हैं,
नये खेल में सीखने प्रेम का ढंग
कि ठंडी पड़ी हुई प्रीति की आग
उठे फिर से दिल में बेधड़क!
बड़ी ठण्डी सड़क!
बड़ी ठण्डी सड़क!

जून, १९४०]

रोये जा !

दुनिया हँसती है हँसने दे,
फबती कसती है कसने दे,
पर तू चुङ्गी के चुनाव में
पटपर नाव डुबोये जा !
तू रोये जा !

जाति-भेद फैलाता जा तू,
धर्म, अधर्म बताता जा तू,
पर जब वश न चले कोने में
टप-टप अश्रु पिरोये जा !
तू रोये जा !

सबको बाप बनाता जा तू,
खुद को आप गिराता जा तू,
मत गिरने को गिरना समझे
गम का बोझा ढोये जा !
तू रोये जा !

रोये जा

दौलत में लग गया पलीता,
फिर भी नहीं इलैक्शन जीता,
कोई बात नहीं है बन्दे
रुपये - पैसे खोये जा !
तू रोये जा !

धन गया मगर न सवाद मिला,
अच्छा न तुझे उस्ताद मिला,
अब जीहजूर से जाकर कह
ऊसर में दाने बोये जा !
तू रोये जा !
ऐ रोने वाले !

नवम्बर, १९४४]

रसिया

अरे पानी कौ पड़ौ अकाल, मोय अपने देस बुलाइल।
चिट्ठी लिखूं दुलारेलाल, मोय अपने देस बुलाइलै।

जा दिन ते दिल्ली आई,
मैंने बड़ी मुसीबत पाई,
अरे, मेरौ हाल भयौ बेहाल, मोय अपने देस बुलाइलै।

यहाँ कपड़ा मिलै न लत्ता,
मैंने ढूंढ्यौ पत्ता - पत्ता,
ढक्का खाये, खिंच गई खाल, मोय अपने देस बुलाइलै।

यहाँ चून किरकिरौ आवै,
मेरे भय्या, मोय न भावै,
अरे, लकड़िन की मिट गईं टाल, मोय अपने देस बुलाइलै।

अब नल में रह्यौ न पानी,
याइ पीगई चुन्नी नानी,
भूंठे पड़े कटोरा - थाल, मोय अपने देस बुलाइलै।

यहाँ दिन में भूभर बरसै,
दुनिया पानी कूं तरसै,
मैं तो ह्वैगई खूब निहाल, मोय अपने देस बुलाइलै।

मेरे राम मुसीबत आई,
हैगये तीन दिना नाइं न्हाई,
अरे, मेरे बार भये जंजाल, मोय अपने देस बुलाइलै।

मोइ अच्छी दिल्ली ब्याही,
पानी की हु यहाँ तबाही,
गटरन के बुरे हवाल, मोय अपने देस बुलाइलै।

जून, १६४५]

तुम मिलीं... !

तुम मिलीं, मुझे मालूम हुआ —
तुम पंजाबिन हो तूफानी,
इठलाती-सी,
बलखाती-सी,
उस दिन देखा,
घंटेघर के चौराहे पर
तुम चाट रही थीं खड़ी-खड़ी
उस दही-बड़े के पत्ते को
थीं मिर्चें जिसमें मनमानी।

और मैं सिक्ख
उमर का ढला,
थका,
और हारा,
तेरे रूप-भार,
यौवन को
सहने वाला,
जी आये सो करो
नहीं कुछ कहने वाला,
मौन,

और गंभीर
शांत,
और श्रांत,
तेरे रूप-सरोवर में
सब रोष भुलाकर,
लूट-लुटाकर,
रहता हूं उद्भ्रान्त ।

२

तुम मिलीं, मुझे मालूम हुआ—
तुम हाय 'प्रभाकर' पास कर चुकीं,
अपने नित्य नये फैशन से
उन सबका उपहास कर चुकीं,
डाल बगल में हाथ
जो कि इण्डिया गेट की हरी घास पर
साथ किसी परदेशी को ले
नित्य नये कौतुक रचती हैं !

और मैं बेबस हूं असहाय,
न हिन्दी आय,
न उर्दू जाय,
कहूं अगर मुँह से ब्राह्मण
तो ब्रह्मन ही कह पाय !

कि मेरे लम्बे-लम्बे बाल,
कि मेरी दाढ़ी भी बिकराल,
कि मेरी अजब लटपटी चाल,

रोज-रोज गुरुद्वारे जाकर
कहता सत्त श्री अकाल !

२

तुम मिलीं, मुझे मालूम हुआ—
तुम गुड़िया हो रंगीन सजी,
जी जिसे देखते जाग उठे,
बस दूर बुढ़ापा भाग उठे,
वह लोह-भस्म की पुड़िया हो
तुम शक्ति-श्रोत हो पारा-सी,
अंगारा-सी,
हर रोग दूर करने वाली
तुम शीशी अमृतधारा-सी।

और मैं वह हूं
जिसके हाथ,
कि जिसके पाँव,
पुरानी बीवी ने ही तोड़ दिये,
झकझोर दिये,
मैं व्याकुल हूं असहाय,
करूं क्या हाय !

तुम मिलीं अचानक मुझे
देवि, मैं पूछ रहा हूं तुमसे
मुझे विवाहोगी क्या ?
साथ लगाओगी क्या ?
मरा जिलाओगी क्या ?

जुलाई, १९४५]

आराम करो !

एक मित्र मिले, बोले, "लाला,
तुम किस चक्की का खाते हो ?
इस छै छटांक के राशन में भी
तोंद बढ़ाये जाते हो !

क्या रक्खा मांस बढ़ाने में
मनहूस, अकल से काम करो !
संक्रान्ति - काल की बेला है
मर मिटो जगत में नाम करो !"

हम बोले, रहने दो लिक्चर
पुरखों को मत बदनाम करो ।
इस दौड़-धूप में क्या रक्खा,
आराम करो, आराम करो !

आराम जिन्दगी की कुंजी,
इससे न तपैदिक होती है ।
आराम-सुधा की एक बून्द
तन का दुबलापन खोती है ।

आराम शब्द में राम छिपा, जो
भव - बन्धन को खोता है ।

आराम शब्द का ज्ञाता तो
बिरला ही योगी होता है।

इसलिए तुम्हें समझाता हूं,
मेरे अनुभव से काम करो।
ये जीवन, यौवन क्षणभंगुर
आराम करो, आराम करो!

यदि करना ही कुछ पड़ जाये
तो अधिक न तुम उत्पात करो।
अपने घर में बैठे - बैठे बस,
लम्बी - लम्बी बात करो!

करने - धरने में क्या रक्खा,
जो रक्खा बात बनाने में।
जो होठ हिलाने में रस है
वह कभी न हाथ चलाने में।

तुम मुझसे बतलाऊं—
है मजा मूर्ख कहलाने में!
जीवन-जागृति में क्या रक्खा,
जो रक्खा है सो जाने में!

(क्योंकि) तुम चतुर बनो चाहे जितने
वे बुद्धू ही बतलायेंगीं।
दो पैसे की तरकारी पर
लाखों ही बात सुनायेंगीं।

कह देंगी तुमसे तो अच्छा,
लड़का सौदा ले आता है।
तुम छै बच्चों के बाप हुए
कुछ आता है ना जाता है!

मैं यही सोचकर, पास अकल के
कम ही जाया करता हूं।
जो बुद्धिमान जन होते हैं,
उनसे कतराया करता हूं।

दीये जलने के पहले ही
घर में आजाया करता हूं।
जो मिलता है खा लेता हूं
चुपके सो जाया करता हूं।

मेरी गीता में लिखा हुआ—
जो सच्चे योगी होते हैं।
वे कम-से-कम बारह घण्टा
तो बेफिक्री से सोते हैं।

अदवायन खिंची खाट में जो
पड़ते ही आनंद आता है।
वह सात स्वर्ग, अपवर्ग, मोक्ष से
भी ऊंचा उठ जाता है।

जब निद्रा-भक्त लगा लुङ्गी
लम्बी टांगें फैलाता है।

ता सच कहता हूं स्वर्ग
हाथ से दो अंगुल रह जाता है।

जब नरम गुदगुदे गद्दे पर
चादर सफेद बिछ जाती है।
तो ऐसा लगता है, 'यू० पी० में
पंत - मिनिस्ट्री आती है।

जब सुख की नींद कढ़ा तकिया,
इस सर के नीचे आता है।
तो सच कहता हूं इस सर में
इंजन जैसे लग जाता है।

मैं मेल ट्रेन होजाता हूं,
बुद्धी भी फक-फक करती है।
भावों का रश होजाता है
कविता बस उमड़ी पड़ती है।

जब हिन्दी का कवि पड़ा-पड़ा
खटिया पर करवट लेता है।
तो बिना कलम, कागत धरती–
आकाश एक कर देता है।

उस वक्त पलंग पर की मक्खी
भी चन्द्रमुखी बन जाती है।
झींगुर की भी आवाज
पायलों का धोखा दे जाती है।

आराम करो!

मैं औरों की तो नहीं, बात
पहले अपनी ही लेता हूँ।
मैं पड़ा खाट पर बूँटों को
ऊँटों की उपमा देता हूँ।

मैं खटरागी हूँ मुझको तो
खटिया में गीत फूटते हैं!
छत की कड़ियाँ गिनते-गिनते
छन्दों के बन्ध टूटते हैं!

मच्छर का इन्जैक्शन लगते ही
जो ,चेतनता आती है।
वह ऐसी पाकिस्तानी है
छन्दों में कही न जाती है!

मैं इसीलिए तो कहता हूं
मेरे अनुभव से काम करो!
यह खाट बिछालो आँगन में
लेटो, बैठो, आराम करो!

जनवरी, १९४९]

मैं भी बदला, तुम भी बदलो...!

यह पहली होली आई है।
जब मैं बदला ऐसे, जैसे
भगतिन होगई बिलाई है!
यह पहली० ॥

जी-तोड़ करी कोशिश लेकिन,
फिर भी मैं छैला बन न सका।
छल्ले बालों में पड़ न सके,
छाती का पंजर तन न सका।

खाता था रोज टमाटर पर
चेहरे पर खून नहीं आया।
आंखें त्रिफले से धोता था
पर वह मजमून नहीं आया।

गालों को खुरचा करता था
फिर भी ये खाकी-खाकी थे।
मालिश-पर-मालिश करता था
फिर भी कांटे-से बाकी थे।

कोई मुझको देखे, देखे,
पर दुनिया नहीं पिघलती थी।
'बारहखम्भे की भीड़' मुझे
मुँह बिचकाकर ही चलती थी।

तो हुआ बड़ा वैराग्य
बाल सर के मुंडवाकर आया हूँ।
मलमल तो मिलती ही कब थी,
खादी खरीदकर लाया हूं!

ऊंची धोती, नीचा कुरता,
घुटमुण्ड चांद, वैरागी हूं।
मैं अपनी नजरों में स्वामी,
जग की नजरों में त्यागी हूं।

अब सब कुछ खुद ही आता है,
पर मैं न हाथ में लेता हूं।
उस ओर वहां सैक्रेट्री है,
उंगली से बतला देता हूं।

वे 'सब' कर देते हैं प्रबन्ध
मैं चादर में छिप जाता हूं।
पहले मैं केवल रामू था
अब रामानन्द कहाता हूं।

मेरे भाषण-आकर्षण की
हर ओर दुहाई छाई है।
यह पहली० ॥

(२)

यह पहली होली आई है।
जब तुम बदलीं ऐसे, जैसे
बदली कुछ नौकरशाही है।
यह पहली० ॥

मैं देख रहा हूं इधर प्रिये,
तुम में परिवर्तन आया है।
जम्पर बदला, साड़ी बदली,
बदला अन्दर का साया है।

अब बदली सर की मांग,
तेल भी बदला खुशबू वाला है।
इयरिंग बदले, लाकिट बदला,
सब बदला हुआ मसाला है!

लग जाय नजर तुमको न कहीं,
क्यों पंजाबिन होती जाती?
'मजदूरों की सरकार'! पुराना
फूहड़पन खोती जाती?

मैं देख रहा हूं इधर, दाल में
बाल नहीं मिल पाता है!
अब बिना कहे ही क्यों मुझको
दाना-पानी मिल जाता है?

एक बात बताओगी कहो,
कुछ राज नहीं मिल पाता है?
इस काले, अदना, सेवक को
अब क्यों पुचकारा जाता है?

अब तो मेरी घुड़की भी तुम
दो-एक बार सुन लेती हो!
या खैर करे परवरदिगार
तुम भी अब मुस्का देती हो!

कुछ नहीं समझ में आता है,
तुम हारी, या मैं जीता हूं?
मैं गरम दूध का जला हुआ हूं
छाछ फूँककर पीता हूं!

संगिनि, तुमने समझौते का
इस दम जो कदम उठाया है।
वह खुदा कसम सच्चा है या
उसमें भी कोई माया है?

या नई 'चार-सौ-बीस' प्रिये,
तुमने कोई अपनाई है।
यह पहली० ॥

(३)

यह पहली होली आई है।
जब मैं बदला, तुम भी बदलीं,
लाला ने ली अंगड़ाई है!
यह पहली० ॥

जब राम-कृपा से लाला ने
लाखों ही टके कमाये हैं।
सरकार टापती रही, हजारू-
नोट सभी भुनवाये हैं!

मैं तो इस निर्णय पर पहुँचा
लालाओं से जग हारा है।
सरकार विचारी तुच्छ, इन्होंने
परमेसुर दे मारा है!

तुम इधर करो कण्ट्रोल,
उधर ये चोरबजार चला देंगे।
सूरज का भी आजाय बाप
उसको भी कहीं छिपा देंगे।

अब होली के ही दिन देखो
मिलता है रंग-गुलाल नहीं।
गेहूं गायब, शक्कर गायब,
बन सकते घर में माल नहीं।

पर मटरूमल के घर देखो,
रंग की नदियां बहती होंगी।
कैसा गेहूं, सूजी-मैदा की
गुझियाएं पकती होंगी।

उन नये गढ़ाये गहनों में
लालाइन झमक रही होगी।
वाइल के सुन्दर कपड़ों में
वह दूनी चमक रही होगी।

भगवान्, अगर इस जीवन में
कुछ अच्छे पुण्य कमाऊं मैं।
तो जन्म दूसरा किसी बड़े
लाला के घर में पाऊं मैं।

मैं भी बदला, तुम भी बदलीं...!

फिर नहीं लड़ाई ब्यापेगी,
कण्ट्रोल न जिगर जलायेगा।
हर रात दिवाली नाचेगी,
हर दिन होली ले आयेगा।

सच पूछो तो इस दुनिया में
लालाओं की बन आई है।
यह पहली० ॥

मार्च, १९४६]

मैं भी अब हड़ताल करूँगी !

पढ़-पढ़ कर अखबार—
बिगड़ती जाती हैं 'जग्गी की जीजी'
आज सवेरे बोलीं, "सुनना,
मैं भी अब हड़ताल करूंगी।

दुनिया जब हड़ताल कर रही
अपनी आदत छोड़ पुरानी।
तो बीसवीं सदी की नारी,
कैसे सह सकती मनमानी?

आखिर तुमने क्या समझा है,
मैं कोई कमजोर नहीं हूं?
कल से बन्द तुम्हारा खाना,
कल से बन्द तुम्हारा पानी।

सावधान! कल प्रातकाल से
खाटें नहीं उठाऊंगी मैं।
कान खोलकर सुनलो, कल से
झाड़ू नहीं लगाऊंगी मैं।

मैं भी अब हड़ताल करूंगी...!

"पानी नहीं भरूंगी, बर्तन
साफ करूंगी नहीं किसी के,
अपना चूल्हा आप सम्भालो
खाना नहीं पकाऊंगी मैं।

सुनते हो, मैं एक रोज
पहले से चेताये देती हूं।
आंखों आगे खरा जुबानी
नोटिस चिपकाये देती हूं।

मैं क्या दिल्ली के अध्यापक
से भी कम हूं किसी बात में;
बड़ी पुरानी सोशलिस्ट हूं,
धमकाए से नहीं डरूंगी!"

मैं भी अब हड़ताल०

के

अकल सुन्न होगई हमारी!
हे भगवान्! हमारी 'इनको'
यह क्या लगी नई बीमारी?

रोना-धोना, मैके जाना
ये गोले ही विध्वंसक थे,
किस दुश्मन ने तुम्हें बतादी
यह 'एटमबम' की तय्यारी!

नौकर यदि हड़ताल करे तो
बात समझ में भी आती है।
लेकिन यदि 'सरकार' करे
हड़ताल बुद्धि तब चकराती है!

ओ मेरी सरकार! बताओ
क्या मैंने अपराध किया है?
क्यों चर्चिल-सी अक्ल तुम्हारी
लेबरमयी हुई जाती है?

आज तुम्हें क्या हुआ सुहासिन
ये तुम में किसकी छाया है?
अरी सुनयने बोल तुझे
किस कम्यूनिस्ट ने बहकाया है?

"मुझे कौन बहकायेगा, मैं
सब जग को बहका आऊंगी;
बात बनाओ नहीं, कदम अब
हर्गिज पीछे नहीं धरूंगी।
मैं भी अब हड़ताल॰

मेरी मांग तीन हैं, पहली—
रुपया-पैसा मैं रक्खूँगी।
कुल आमदनी का हिसाब
धेला-धेला तुमसे पूछूंगी।

मांग दूसरी है कि—काम
मेरे में दखल न दे पाओगे;
बात-बात में टांग अड़ाना
नहीं सहूंगी, नहीं सहूंगी।

मैं भी अब हड़ताल करूँगी '' !

मांग तीसरी है कि—तुम्हें
घर में भी हाथ बटाना होगा।
दाल बीनना, चून छानना,
कल से चाय बनाना होगा।

पहले यह मंजूर करो,
पत्नी इस घर में दास नहीं है;
क्यास-पयास कुछ नहीं तुम्हें
बस, 'बीबी-दास' कहाना होगा।

एक इञ्च भी नहीं हटूंगी
नहीं किसी से हेटी हूं मैं।
लाटसा'ब तुम घर के होगे,
बड़े बाप की बेटी हूं मैं।
इस झगड़े का पंच-फैसला
भइया जब तक जांच न लेंगे,
तब तक समझौते की शर्तों
पर मैं हामी नहीं भरूंगी।"
मैं भी अब हड़ताल०

दिसम्बर, १९४६

मुझको अपने घर पहुंचादो

"सारी दिल्ली में रात-रात,
अल्लाहो...हर-हर होती है।
तुम पड़े पड़े ठर्राते हो,
मुन्नी डर-डर कर रोती है।
सामने बिचारी कृष्णा को,
लग गये दस्त हैं परेशान।
नीचे वाले लालाजी की तो,
..............धोती है!

ये ऊंचे घरवाले ठाकुर,
सो रातों जागा करते हैं!
चूहे का खुटका हो तो,
लकड़ी ले भागा करते हैं।

और सतवन्ती के पति ने तो,
दफ्तर जाना ही छोड़ दिया।
घर में बैठ बस बातों की,
बन्दूकें दागा करते हैं!

दुनिया के पति अपने घर में,
सब बात बताया करते हैं।
जब जैसा भी सुन आते हैं,
फौरन दुहराया करते हैं।

पर तुम हो बात पूछने पर,
करवट ले-लेकर सोते हो।
उलटा जिससे डर लगे,
इस तरह नाक बजाया करते हो!
ऐसी भी तो क्या नींद मरी,
जो सात बजे के सोते हो!
मैं खड़ी जगाया करती हूँ,
पर टस-से-मस ना होते हो!
तुम तो पत्थर हो, पर मुझको,
लगता, "यह आये, वह आये"।
ना बाबा, आई बाज, मुझे,
तुम टिकट आज ही कटवादो!"
मुझको अपने घर०

घर जाना हो बेशक जाओ,
पर नहीं नींद को कोसो जी!
खाओ, पीओ और मौज करो,
बच्चों को पालो-पोसो जी!
बारह घंटे का कर्फ्यू हो,
मैं सोलह घंटे सोता हूँ।
ऐसी फुर्सत का समय कहो,
फिर कब आयेगा सोचो जी?
फिर झगड़े तो इस दुनिया में,
रूपसि, होते ही रहते हैं।
स्थित-प्रज्ञ मुझ जैसे नर,
कुछ हो सोते ही रहते हैं।

फिर मुंह ढककर सोजाने में,
खतरा भी कम होजाता है;
ज्यादा जागृत चैतन्य मनुज,
देखा रोते ही रहते हैं!

घबराओ नहीं, प्रिये, भारत को
जग में नाम कमाने दो!
दुश्मन तो अब बाकी न रहे,
भाई पर छुरा चलाने दो!
आजादी इन्हीं प्रयत्नों से
जल्दी ही आने वाली है;
पहले भारत की जनसंख्या
कुछ तो थोड़ी होजाने दो!

मार्च, १९४७]

धोखा हुआ !

मैं खुद बड़ा होशियार था,
तैराक, तीरन्दाज था।
अपनी अकल पर क्या कहूँ,
मुझको बड़ा ही नाज था।

थी खोपड़ी छोटी, मगर,
इसमें भरा तूफ़ान था।
इसमें भरी थीं खूबियां,
इसमें भरा शैतान था।

पर हवा कुछ ऐसी चली,
जिससे अंधेरा छागया।
शैतान भी चकरा गया,
समझा न कुछ, घबरा गया।
धोखा हुआ, धोखा हुआ !

हां देह पतली थी, मगर,
मैं था न पतला खून का।
थी शक्ल कुछ ऐसी कि बस,
मज़मून था कार्टून का !

यों बात थी कुछ भी न पर,
हावी जहां पर होगया।
मैं वह नमूना था कि सांचा,
ढाल मुझको खोगया।

मैं था बड़ा बातून पर,
बातों में उनकी आगया।
मैं मिशन के प्रस्ताव को,
हलुआ समझकर खागया!
धोखा हुआ, धोखा हुआ!

मैं उस गुरू का शिष्य था,
जो 'ना' सिखाकर मर गये!
जो 'हां' से तोबा कर गये,
औ नाम 'जी ना' धर गये!

मैं सीख पर चलता रहा,
फूला किया, फलता रहा।
मेरा दिया सुनसान में
ही सही, पर जलता रहा!

पर बुद्धि पर पाला पड़ा,
गुरु के वचन बिसरा गया।
अपनी असल को छोड़कर मैं,
'ना' से 'हां' पर आगया!
धोखा हुआ, धोखा हुआ!

पर होगया सो होगया,
उसका नहीं अफसोस है।
फिर 'ना' के फिट आने लगे,
और 'हां' हुई खामोश है।

मैं बेनजीर फकीर हूँ,
मेरी दुआ 'सब दे' में है।
मैं लाइलाज मरीज हूँ,
मेरी दवा परदे में है।

मैं खुद कटीली धार था,
पर वज्र से टकरा गया।
मैं तेज शुतुर-सवार था,
पर हाय ठोकर खागया!
धोखा हुआ, धोखा हुआ!

जून, १६४६]

अब तो मुझको स्वीकार करो

अब तो मुझको स्वीकार करो !
बस बहुत हुआ खोलो किवाड़, रस की बातें दो-चार करो !'
मैं दो घंटे से खड़ा-खड़ा
कुण्डी-किवाड़-झंकार रहा !
'ऐ सुनो,' 'सोगई' क्या,' 'खोलो,'
रह-रह कर तुम्हें पुकार रहा।
पर तुम पत्थर की हो मानो
जगती हो आँखें बन्द किये,
सारा पड़ोस जग गया कि मैं
चिल्ला - चिल्लाकर हार गया।
तुम मेरी नहीं दूसरों की सुविधा का तनिक विचार करो !'
अब तो मुझको···

ऐ हिटलर-दिल ! चर्चिल-दिमाग ! !
आखिर क्या हुआ बताओ तो ?
यह करफ्यू क्यों कर लगा मुझे
कुछ इसका भेद सुनाओ तो ?
तुम अल्टीमेटम दिये बिना ही
युद्ध शुरू कर देतीं हो,
मैं समझ-सोचकर चलूं मुझे
अपने कानून सिखाओ तो ?
मैं स्वयं पराजित हीनशस्त्र तुम अपना अस्त्र उतार धरो !'
अब तो मुझको···

अब तो मुझको स्वीकार करो

मैं सह लूंगा तुम चाय साथ में
आगे से मत पिया करो।
मैं यह भी सह लूंगा सब्जी
मत मेरे दिल की लिया करो।
आखिर कुछ दिन तुम मत बोलो
है कसम कि मैं भी बात करूं,
पर भागवान् पड़ रहने को
अन्दर तो आने दिया करो।
तुम मेरी इस लाचारी पर इतनी न तेज तलवार करो!
अब तो मुझको···

जनवरी, १६४८]

गलती पर पछताता हूं मैं !

गलती पर पछताता हूं मैं !

पता नहीं था कभी जेल
जाना भी ऐसे रंग लायेगा !
पता नहीं था कभी कि नेहरू
चीफ मिनिस्टर हो जायेगा !

होता यदि मालूम मुझे तो
मैं भी था पूरा हरजाई !
छाती पर यदि नहीं, पीठ
पर ही डंडा खा लेता भाई !

करतब में यदि नहीं, लैक्चरों
में ही धुँआ-धार कर देता !
बयालीस में छिप जाता, बस
बन जाता जनता का नेता !

थोड़ा-सा दे कष्ट बाद में
अगर मिनिस्टर मुझे बना लो,
कसम आपकी नहीं, जेल जाने
से अब घबराता हूं मैं !

गलती पर···

गलती पर पछताता हूं मैं

अजी, कालिका भाई, मुझको
नया यरवदा-चक्र चाहिए।
बगुले की-सी पाँखों वाली
गांधी टोपी वक्र चाहिए।

बिना सूत के धोती-कुरता
भर जोऊंगा मुझको दे दो।
मरे हुए चमड़े की चप्पल
मुझे कहीं से कोई ले दो।

कोई मुझे बता दो, बापूजी
की कहाँ प्रार्थना होती?
अरे बता दो कैसे बांधूं
मोटी ये खादी की धोती?

बांधूगा, बांधनी पड़ेगी
इसके बिना न काम चलेगा,
छोड़ पुरानी चाल, नये
हथकंडों को अपनाता हूं मैं!
गलती पर···

सुनती हो, जग्गो की जीजी,
तुम भी अब हथियार निकालो।
छोड़ डोरिया, लट्ठा, मलमल
खादी की सलवार सिला लो।

मरे स्वरों में अरी नमस्ते
कहा करो मत मेरी रानी!

ये 'जय-हिन्द'-काल है, इसमें
बन जाओ झांसी की रानी।

इस बैठक में नेताओं के
कल से देखो चित्र लगालो।
नेहरूजी की नई किताबें
जाओ, वी० पी० से मँगवालो।

और देखना फंड मांगना
तुम्हें सीखना होगा ढंग से।
नई रसीदें, नये बकस
बनवाकर फौरन लाता हूं मैं!
गलती पर···

सितम्बर, १६४७]

एक नई मुसीबत आई है !

सोचा था पत्नी पर लिखकर
कुछ जग में नाम कमाऊंगा।
यह दुनिया पत्नी-पीड़ित है
कुछ इसको धीर बंधाऊंगा।
फिर अभी हास्य-रस के लेखक
तो इने-गिने मामूली हैं;
हिन्दी के अन्धों में मैं ही
काना सरदार कहाऊंगा!

कुछ यही समझकर के मैंने
'उन' पर कंट्रोल कराया था।
उस सूधी-सी ब्रजबासिन को
स्टालिन-सी बतलाया था।
कहनी-अनकहनी बातें लिख
अखबारों में छपवाईं थीं;
परमेश्वर 'उन्हें' बताकर के
पत्नीव्रत-धर्म चलाया था।

मैं हंसी-हंसी में कह बैठा—
हैं उनकी कमर कमानी-सी।
आंखें कमरख की फांखें-सी
भौंहें जमुना के पानी-सी।
वे उठती हुई जवानी-सी
जब चलती हैं दिल चलता है;
वे मेरी कला-कल्पना हैं,
हैं रस की स्वयं कहानी-सी।

फिर क्या था कविता के प्रेमी
गुब्बारे जैसे फूल गये!
'जग्गो की जीजी' याद रही
बेचारे कवि को भूल गये!
मैं छब्बे बनने चला मगर
दुब्बे भी हाय न रह पाया;
सारी मेहनत बेकार गई
सब हथकंडे प्रतिकूल गये!

अब दोस्त पड़े रहते पीछे
कहते हैं चाय पिलाओ तुम!
वे 'ऐजी-ओजी' कैसी हैं
हमको भी तो दिखलाओ तुम!
उस 'सोनचिरय्या' की चर्चा
ऐसी घर-घर में छाई है;
बूढ़े-बूढ़े भी कहते हैं—
अपना घर तो दिखलाओ तुम!

एक नई मुसीबत आई है

जिनको न कभी देखा, न सुना
अब उनकी चिट्ठी आती है!
भाई से पहले भाभी को
आदाब बजाई जाती है!
मेरी बीबी के बांटे में
देवर-ही-देवर आये हैं;
यह शकुन नहीं अच्छे साहब;
तबियत मेरी घबराती है।

ये देवरसाहब लिखते हैं
अब के जब दिल्ली आयेंगे।
तो अपना डेरा निश्चय ही
वे मेरे यहां लगाएंगे!
यह सौदा तो महंगा बैठा
घाटा है इस कविताई में;
ना, बाबा, हम ऐसी जोखिम
हरगिज भी नहीं उठायेंगे।
मैं किस-किसको दूं क्या जवाब
हर ओर मुसीबत छाई है!
पत्नी का सुन्दर होना भी
सौ आफत की जड़ भाई है।
मैं मित्रों के डर के मारे
स्थान बदलता रहता हूं,
अब किससे दिल का दर्द कहूं
एक नई मुसीबत आई है।

जनवरी, १९४७]

मैं कविता लिखना भूल गया !

मैं कविता लिखना भूल गया !

आखिर हिन्दी का लेखक था, होगई जरा - सी वाह - वाह !
दो-चार किताबें छपीं कि बस, गुब्बारे जैसा फूल गया !
मैं कविता लिखना···

तुकबन्दी क्या आई, खुद को
मैं अफलातून समझ बैठा !
अपने को ही मैं स्वयं हास्यरस
का मजमून समझ बैठा !

इस कदर हो उठा प्रगतिशील
पगहा-बन्धन सब तोड़ दिये,

मेरठ के ही स्टेशन को, मैं
देहरादून समझ बैठा !
धरती पर टिके न पैर,
लपककर आसमान में झूल गया !
मैं कविता लिखना···

फिर क्या था बातों - बातों में
कवि कालिदास को मात किया !
खागये सूर - तुलसी चक्कर
जब मैंने दिन को रात किया !

और इस युग के कवि, अरे राम !
वह तो सब निरे अनाड़ी हैं,

कोई भी तो एक्सप्रेस नहीं,
सब - के - सब भैंसागाड़ी हैं !
घबराकर लोचन मूँद गये,
जब डाल आँख में धूल गया !
मैं कविता लिखना...

था अब तो मैं-ही-मैं केवल,
फैला केले का पत्ता - सा !
चिकना बैंगन - सा गोलमोल,
अकड़ा कुछ कुक्करमुत्ता - सा !

आलोचक कन्नी काट गये
सोचा भिड़ने में सार नहीं,

जो छेड़ दिया तो चिपट गया
बन गया बर्रे का छत्ता - सा
सज्जनता से सम्बन्ध मेरा
बिलकुल ही कट जड़मूल गया !
मैं कविता लिखना...

आजी सुनो···!

धीरे-धीरे मैंने सोचा
कविताई में कुछ सार नहीं।
इसमें न नौकरी मिलती है,
मिलती है इसमें कार नहीं!

वक्तव्य न छपते पत्रों में,
थैलियाँ न होतीं भेंट यहाँ,

वह धन्धा है बेकार, जहाँ
पर चन्दे का व्यापार नहीं!
जब चन्दे की लग गई चाट
तो बन्दा कविता भूल गया!
मैं अपने में ही फूल गया!
सारा आदर्श फिजूल गया!
मैं कविता लिखना भूल गया!

जुलाई, १९४८]